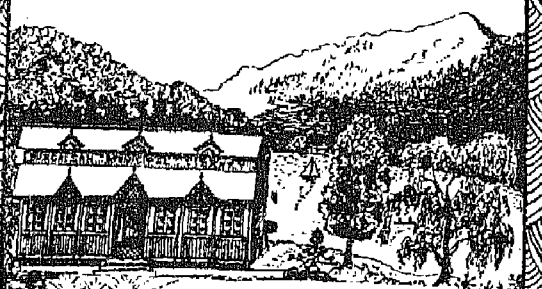

DURGA SAH MUNICIPAL LIBRARY
NAINI TAL
दुर्गा साह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल

Class no. 891.38
Book no. Sh38V
Key no. 4492

पैवेला सी

(मूल बँगला से अनूदित)

L. Sal
2-4-8C

शरत्चन्द्र

प्रभात प्रकाशन दिल्ली

प्रकाशक :
प्रभात प्रकाशन
२०१, चावड़ी बाजार
दिल्ली

**

Durga Sah Municipal Library,
NAINITAL.
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाईब्रेरी
नैनीताल
Class No. 891.38.....
Book No. SA.38.M.....
Received on April.1958

अनुवादक :
राजेश दीक्षित

**

प्रथम संस्करण
१९५९ ई०

**

सर्वाधिकार सुरक्षित

**

मुद्रक :
सुभाष प्रिंटिंग प्रेस
तिलकद्वार
मथुरा

**

मूल्य :
दो रुपया

4492

दो शब्द

शरत्-कथा-माला की पहिली पुस्तक 'अभागी का स्वर्ग' के पश्चात् अब यह दूसरी पुस्तक 'विलासी' प्रस्तुत है; तीसरी होगी—'सती'।

इस संग्रह में सात कहानियाँ, एक रेखाचित्र 'बाल्य-स्मृति'—जो कहानी की भाँति ही मोहक है—तथा एक 'विलासी'—जिसके आधार पर पुस्तक का नामकरण हुआ है, और जिसके कहानी होने अथवा न होने के सम्बन्ध में अभी तक मतभेद चला आ रहा है—कुल मिलाकर नौ रचनाएँ सङ्कलित हैं। इनमें तीन उनकी बाल्यकाल की कहानियाँ हैं।

शरत्बाबू की इन सभी कृतियों में हृदयस्पर्शी क्षमता प्रभूत मात्रा में विद्यमान है—यह कहने की आवश्यकता नहीं। सभी एक-से-एक अधिक सुन्दर, प्रेरणाप्रद एवं शिल्प की दृष्टि से असाधारण हैं। सभी में सामाजिक-विषमताओं के प्रति विद्रोह है, सभी में अन्तर्द्वन्द्व का सफल मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण हुआ है। इन के द्वारा पाठकों को स्वस्थ-मनोरञ्जन प्राप्त होगा—इसमें भी सन्देह नहीं।

रूपान्तर में अक्षरशः अनुवाद एवं प्रवाह की सरसता की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। आशा है, 'विलासी' को पाठकों का स्नेह प्राप्त होगा।

—राजेश दीक्षित

कथा-सूची

१.	विलासी	...	५
२.	महेश	...	२६
३.	हरिचरण	...	४३
४.	प्रकाश और छाया	...	५०
५.	बलिदान विभीषिका	...	७८
६.	मुकद्दमे का परिणाम	...	८६
७.	देवघर की स्मृति	...	१०७
८.	बाल्य-स्मृति	...	११७
९.	लल्ला	...	१३०

बिलासी*

पक्का दो कोस रास्ता पैदल चलकर स्कूल में पढ़ने जाया करता हूँ। मैं अकेला ही नहीं हूँ, दस-बारह जने हैं। जिनके घर देहात में हैं, उनके लड़कों को अस्सी प्रतिशत इसी प्रकार विद्या-लाभ करना पड़ता है। अतः लाभ के अंकों में अन्त तक बिल्कुल शून्य न पड़ने पर भी जो पड़ता है, उसका हिसाब लगाने के लिए इन कुछेक बातों पर विचार कर लेना काफ़ी होगा कि जिन लड़कों को सबेरे आठ बजे के भीतर ही बाहर निकल कर आने-जाने में चार कोस का रास्ता तय करना पड़ता है, चार कोस के माने आठ मील नहीं; उससे भी बहुत अधिक बर-सात के दिनों में सिर पर बादलों का पानी और पाँवों के नीचे घुटनों तक कीचड़ एवं गर्मियों के दिनों में पानी के बदले कड़ी धूप एवं कीचड़ के बदले धूल

---

* जाने किस गाँव के लड़के की डायरी से उद्धृत। उसका असली नाम जानने की किसी को आवश्यकता नहीं, निषेध भी है। चालू नाम चाहिए तो धर लीजिए—न्याड़ा (जिसके केश मुंड़े हों)।

के समुद्र में तैरते हुए स्कूल और घर आना-जाना पड़ता है, उन अभागे बालकों को माँ-सरस्वती प्रसन्न होकर वर दें कि उनके कष्टों को देखकर वे कहीं अपना मुँह दिखाने की बात भी नहीं सोच पातीं।

तदुपरान्त यह कृतविद्य बालकों का दल बड़ा होकर एक दिन गाँव में ही बैठे या भूख की आग बुझाने के लिए कहीं अन्यत्र चला जाय, उनके चार कोस तक पैदल आने-जाने की विद्या का तेज आत्म-प्रकाश करेगा-ही-करेगा। कोई-कोई को कहते सुना है, अच्छा, जिन्हें भूख की आग है, उनकी बात भले ही छोड़ दी जाय, परन्तु जिन्हें वह आग नहीं है, वैसे सब भले आदमी किस सुख के लिए गाँव छोड़ कर जाते हैं ? उनके रहने पर तो गाँव की ऐसी दुर्दशा नहीं होती।

मलेरिया की बात नहीं छेड़ता। उसे रहने दो, परन्तु इन चार कोस तक पैदल चलने की आग में कितने भद्र लोग बाल-बच्चों को लेकर गाँव छोड़ कर शहर चले गए हैं, उनकी कोई संख्या नहीं है। इसके बाद एक-दिन बाल-बच्चों का पढ़ना-लिखना भी समाप्त हो जाता है, तब फिर शहर की सुख-सुविधा में रुचि लेकर वे लोग गाँव में लौट कर नहीं आ पाते !

परन्तु रहने दो इन सब व्यर्थ बातों को। स्कूल जाता हूँ—दो कोस के बीच ऐसे ही और दो-तीन गाँव पार करने पड़ते हैं। किसके बाग़ में आम पकने शुरू हुए हैं, किस जंगल में करौंदे काफ़ी लगे हैं, किस के पेड़ पर कटहल पकने को हैं, किसके अमृतवान केले की गहर कटने वाली ही है, किसके घर के सामने वाली झाड़ी में अनन्नास का फल रंग बदल रहा है, किसकी पोखर के किनारे वाले खजूर के पेड़ से खजूर तोड़ कर खाने से पकड़े जाने की संभावना कम है, इन सब खबरों को लेने में समय चला जाता है, परन्तु जो वास्तविक विद्या है, कमस्फट्का की राजधानी का क्या नाम है एवं साइबेरिया की खान में चाँदी मिलती है या सोना मिलता है—यह सब आवश्यक तथ्य जानने की तनिक भी फ़ुरसत नहीं मिलती।

इसीलिए इम्तहान के समय 'एडिन क्या है' पूछे जाने पर कहता 'पर्शिया का बन्दर' और हुमायूँ के पिता का नाम पूछे जाने पर लिख आया 'तुगलक खाँ'—एवं आज चालीस का कोठा पार हो जाने पर भी देखता हूँ, उन सब विषयों में धारणा प्रायः वैसी ही बनी हुई है—तदुपरान्त प्रमोशन के दिन मुँह लटकाकर घर लौट आता और कभी दल बाँध कर मास्टर को ठीक करने की सोचता, और कभी सोचता, ऐसे वाहियात स्कूल को छोड़ देना ही ठीक है।

हमारे गाँव के एक लड़के के साथ बीच-बीच में स्कूल के मार्ग पर भेंट हो जाया करती थी। उसका नाम था मृत्युञ्जय। मेरी अपेक्षा वह बहुत बड़ा था। तीसरी क्लास में पढ़ता था। कब वह पहले पहल तीसरी क्लास में चढ़ा, यह बात हम में से कोई नहीं जानता था—सम्भवतः वह पुरातत्त्वविदों की गवेषणा का विषय था, परन्तु हम-लोग उसे इस तीसरी क्लास में ही बहुत दिनों से देखते आ रहे थे। उसके चौथे दर्जे में पढ़ने का इतिहास भी कभी नहीं सुना था, दूसरे दर्जे से चढ़ने की खबर भी कभी नहीं मिली थी। मृत्युञ्जय के माता-पिता, भाई-बहिन कोई नहीं थे; था केवल गाँव के एक ओर एक बहुत बड़ा आम-कटहल का बगीचा और उसके बीच एक बहुत बड़ा खण्डहर-सा मकान; और थे एक दूर के रिश्ते के चाचा। चाचा का काम था भतीजे की अनेकों प्रकार से बदनामी करते रहना, वह 'गाँजा पीता है, चरस पीता है।' ऐसे ही और भी क्या-क्या! उनका एक और काम था यह कहते फिरना, 'इस बगीचे का आधा हिस्सा उनका है, नालिश करके दखल करने भर की देर है।' उन्होंने एक दिन दखल भी अवश्य पा लिया, परन्तु वह जिले की अदालत में नालिश करके नहीं, ऊपर की अदालत के हुक्म से। परन्तु वह बात पीछे होगी।

मृत्युञ्जय स्वयं ही पका कर खाता एवं आमों की फसल में आम का बगीचा किसी को उठा देने पर उसका साल भर का खाने-पहिनने का काम चल जाता; और अच्छी तरह ही चल जाता। जिस दिन मुला-

आगे टूटी दीवालों के अन्त तक आई। इतनी देर तक उसने एक भी बात नहीं कही थी, इस बार धीरे-धीरे बोली—"सड़क तक तुम्हें पहुँचा आऊँ क्या ?"

बड़े-बड़े आम के वृक्षों से सारे बगीचे में जैसे एक जमा हुआ-सा अन्धकार लग रहा था, सड़क दिखाई देने की बात तो दूर, अपना हाथ तक दिखाई कहीं देता था। बोला—"पहुँचाने की जरूरत नहीं, केवल दीपक दे दो।"

उसके द्वारा दीपक मेरे हाथ में देते ही उसके उत्कण्ठित चेहरे पर मेरी आँखें पड़ीं। धीरे-धीरे वह बोली—"अकेले जानेमें डरोगे तो नहीं ? थोड़ा आगे तक पहुँचा आऊँ ?"

एक स्त्री पूछ रही है, डरोगे तो नहीं, अस्तु, मनमें चाहे जो हो, प्रत्युत्तर में केवल एक 'ना' कहकर आगे बढ़ गया।

उसने फिर कहा—"वन-जंगल का रास्ता है, जरा देख-देखकर पाँव रखते हुए जाना।"

मेरे शरीर में रोंगटे खड़े हो गए, परन्तु इतनी देर बाद समझा वह उद्वेग किसके लिए था और क्यों वह उजाला दिखाती हुई इस जंगली-रास्ते से पार कर देना चाहती थी ! सम्भव है, वह मेरा निषेध नहीं सुनती। संग ही आती, परंतु पीड़ित मृत्युञ्जय को अकेला छोड़कर जाने में शायद उसका मन अन्त तक तय्यार नहीं हुआ।

बीस-पच्चीस बीघे का बगीचा था, अतः रास्ता भी कम नहीं था। इस भीषण अन्धकार में प्रत्येक पाँव शायद डरते-डरते ही रखना पड़ता था, परंतु दूसरे ही क्षण उस लड़की की बात से सारा मन इस तरह आच्छन्न हो गया कि डरने का फिर समय ही नहीं मिला। केवल खयाल आने लगा, एक मृतप्राय रोगी को लेकर रहना कितना कठिन है ! मृत्युञ्जय तो किसी भी समय मर सकता था, तब सारी रात इस

जंगल के बीच अकेली लड़की क्या करती ! किस तरह अपनी उस रात को काटती !

इस घटना के बहुत दिन बाद की एक बात मुझे याद आती है। अपने एक आत्मीय की मृत्यु के समय मैं उपस्थित था। अँधेरी रात, घर में लड़के-बच्चे नौकर-चाकर नहीं थे। घर में केवल उनकी सद्य-विधवा स्त्री और मैं ही थे। उनकी स्त्री ने शोक के आवेग में छाती-पीट कर ऐसा काण्ड उपस्थित कर दिया कि यह भय हुआ कि कहीं उसके प्राण भी निकल न जाएँ। रो-रोकर बार-बार मुझसे पूछने लगीं, वे जब स्वेच्छा से साथ-ही-साथ मर जाना चाहती हैं, तब सरकार का क्या है ? उन्हें अब रत्तीभर जीने की इच्छा नहीं है, इसे क्या वे लोग (सरकारी आदमी) समझेंगे नहीं ? उनके घर में क्या स्त्रियाँ नहीं हैं ? वे क्या पत्थर ही हैं ? और यदि इस रात में गाँव के पाँच लोग यदि नदी के किनारे किसी जंगल के बीच उनके सह-मरण (सती होने) का प्रबन्ध करदें तो पुलिस के लोग किस प्रकार जान सकेंगे ? इस तरह की कितनी ही बातें कहीं, परन्तु मेरा तो और बैठे रहकर उनका रोना सुनने से काम नहीं चल सकता था ! मुहल्ले में खबर देने की जरूरत है—अनेक वस्तुएँ इकट्ठी करने की जरूरत है, परन्तु मेरा बाहर जाने का प्रस्ताव सुनते ही वे प्रकृतिस्थ हो गईं। आँखें पोंछकर बोलीं—"भाई, जो होना था, वह हो गया, अब बाहर, जाने से क्या होगा। रात बीत जाने दो न !"

बोला—"बहुत काम है, न जाने पर नहीं होंगे।"

वे बोलीं—"काम रहने दो, तुम बैठो।"

बोला—"बैठने से नहीं चलेगा, एकबार खबर देनी ही पड़ेगी, कहकर पाँव बढ़ाते ही वे चीत्कार कर उठीं, ओरे बाप रे ! मैं अकेली नहीं रह सकूँगी।"

अतः फिर बैठ जाना पड़ा। कारण तब समझ में आया, जिस

स्वामी के जीवित रहते हुए वे निर्भयता पूर्वक पच्चीस वर्ष तक अकेली घर में रहीं, उसकी मृत्यु को चाहे सह भी लें, उसकी मृत-देह के समीप इस अँधेरी रात में पाँच मिनट बैठना भी सहन नहीं हो सकता। छाती यदि किसी बात से फटती है तो इस मृत-स्वामी के समीप अकेले बैठने से ही।

परन्तु उनके दुःख को तुच्छ करके दिखाना भी मेरा उद्देश्य नहीं है। किंवा वे सच्ची नहीं थीं यह बात कहने का भी मेरा अभिप्राय नहीं हैं। किंवा एक आदमी के व्यवहार से ही उसकी अंतिम मीमांसा हो गई, यह भी नहीं है, परन्तु ऐसी और भी अनेक घटनाएँ जानता हूँ, जिसका उल्लेख न करने पर भी मैं यह बात कहना चाहता हूँ कि केवल कर्त्तव्य-ज्ञान के जोर अथवा बहुत समय तक एक साथ घर-गृहस्थी करने के अधिकार से ही इस भय का कोई स्त्री अतिक्रमण नहीं कर पाती। वह कोई और ही शक्ति है जिसका बहुत से पति-पत्नी एक साथ वर्षों तक घर-गृहस्थी चलाते रहने के बाद भी कुछ पता नहीं पाते।

परन्तु अचानक उसी शक्ति का परिचय जब किसी स्त्री-पुरुष के निकट पाया जाता है, तब समाज की अदालत में मुलजिम बनाकर उन्हें दण्ड देना यदि आवश्यक हो तो हो, परंतु मनुष्य की जो वस्तु सामाजिक नहीं है, वह स्वयं तो उसके सुख-दुःख से चुपचाप आँसू बहाए बिना किसी प्रकार नहीं रह सकती।

प्रायः दो महीने तक मृत्युञ्जय की खबर नहीं ली। जिन लोगों ने देहात को नहीं देखा है, अथवा केवल रेलगाड़ी की खिड़की से मुँह बढ़ाकर देखा है, वे तो शायद आश्चर्यपूर्वक कह उठेंगे, "यह कैसी बात है? यह क्या कभी सम्भव हो सकता है कि इतनी बड़ी बीमारी को आँखों से देख आकर भी दो महीने तक फिर उसकी खबर ही नहीं।" उन्हें जताने के लिए यह कहना आवश्यक है कि यह केवल सम्भव ही नहीं, ऐसा ही हुआ करता है। किसी व्यक्ति की विपत्ति में मुहल्लाभर

झुण्ड बाँधकर उमड़ पड़ता है, यह एक जनश्रुति अवश्य है, पता नहीं वह सतयुग के गाँवों में थी या नहीं, परन्तु इस काल में तो कहीं भी देखी है ऐसा याद नहीं पड़ता। तभी जबतक उसके मरने की खबर नहीं मिलती, तबतक वह बचा हुआ है, यही ठीक है।

इसी बीच अचानक एक दिन कान में पड़ा, मृत्युञ्जय के उस बगीचे के भागीदार चाचा शोर मचाते फिरते हैं कि गया, गया, गाँव इस बार रसातल में चला गया। नालते के मित्र* कहला कर समाज में अब वे अपना मुँह दिखाने योग्य नहीं रहे—नालायक एक सपेरे की लड़की से निकाह कह कर उसे घर ले आया है। और केवल निकाह ही नहीं, वह भी न हो चूल्हे में जाय, उसके हाथ का भात तक खाता है! गाँव ने यदि इसका दण्ड न दिया तो बन में जाकर ही रहना पड़ेगा। कोड़ोला और हरिपुर का समाज इस बात को सुनेगा तो—इत्यादि-इत्यादि।

तब लड़के-बूढ़े सभी के मुँह पर एक ही बात, "ऐं—यह क्या हुआ? कलियुग क्या सचमुच ही उलट बैठा है!"

चाचा कहते-फिरते हैं, "यह होगा, इसे बहुत लोग पहले से ही जानते थे। वे केवल तमाशा देख रहे थे; कहाँ का पानी कहाँ जाकर मरा। अन्यथा वह कोई पराया नहीं, पड़ौसी नहीं, अपना ही भतीजा है। मैं क्या उसे घर नहीं ले जा सकता था? उसे क्या डाक्टर-वैद्यों को दिखाने की सामर्थ्य नहीं थी? तब फिर ऐसा क्यों नहीं किया, इसे अब सब देख लें—परंतु अब तो चुप नहीं बैठा जा सकता। यह जो मित्र वंश का नाम डूबा जा रहा है। गाँव के मुँह पर जो कालिख लगी जा रही है!"

तब हमारे गाँव के लोगों ने मिल कर जो काम किया, उसे सोचते ही मैं लज्जा से मर जाता हूँ। चाचा चले नालते के मित्र-वंश के

---

* एक विशिष्ट स्थान का वंश—जिस पर गर्व किया जा सकता है।

अभिभावक बनकर, और हम दस-बारह जने साथ चले, गाँव के मुँह पर कालिख न लगे, इसलिए।

मृत्युञ्जय के टूटे-फूटे मकान पर जाकर जब उपस्थित हुए, उस समय शाम हो चुकी थी। लड़की भग्न-बरामदे के एक किनारे बैठी हुई रोटी बना रही थी, अचानक लाठी-सोटा हाथ में लिए इतने लोगों को आँगन में देखकर भय से नीली पड़ गई।

चाचा ने घर के भीतर झाँक कर देखा, मृत्युञ्जय सो रहा है। झटपट साँकल चढ़ा दी, उस भय के कारण मृतप्रायः लड़की से सम्भाषण शुरू कर दिया। अधिक क्या कहा जाय, संसार के किसी भी चाचा ने किसी भी समय शायद भतीजे की स्त्री से ऐसा सम्भाषण नहीं किया होगा। वह ऐसा था कि लड़की हीन सपेरे की लड़की होते हुए भी उसे सहन नहीं कर सकी। आँखें उठाकर बोली—"मेरे पिता ने बाबू के साथ निकाह कर दिया है, जानते हो!"

चाचा बोले, "ठहर तो री!" इत्यादि-इत्यादि—एवं साथ-ही-साथ दस-बारह लोग वीरदर्प से हुँकारते हुए उसकी गर्दन पर टूट पड़े। किसी ने चोटी पकड़ी, किसी ने कान पकड़े, किसी ने दोनों हाथ पकड़े एवं जिन्हें ऐसा सुयोग नहीं मिला, वे भी निश्चेष्ट न रहे।

कारण, संग्राम-स्थल पर हम लोग कापुरुषों की भाँति चुपचाप खड़े रह सकते हैं, हमारे विरुद्ध इतनी बड़ी बदनामी करते फिरने में शायद नारायण के प्रतिनिधियों की आँखों को भी लाज लगेगी। यहाँ पर एक अप्रासंगिक बात कह रखना चाहता हूँ। सुना है विलायत आदि म्लेच्छ देशों में पुरुषों में एक कुसंस्कार है, स्त्रियों को दुर्बल एवं निरुपाय कहकर उनके शरीर पर हाथ नहीं उठाते। यह भला क्या बात हुई। सनातनी हिन्दू इस कुसंस्कार को नहीं मानते। हम लोग कहते हैं, जिसके शरीर में जोर नहीं है, उसी के शरीर पर हाथ उठाया जाता है। वह स्त्री-पुरुष में से कोई भी क्यों न हो।

लड़की पहले ही जो एक बार आर्त्तनाद कर उठी थी, उसके बाद एकदम चुप रह गई। परन्तु हम लोग जब उसे गाँव के बाहर छोड़ आने के लिए घसीटने लगे, तब वह विनय करती हुई कहने लगी, बाबू लोगो, मुझे एकबार छोड़ दो, मैं रोटियों को घर में रख आऊँ। बाहर रह जाने से सियार-कुत्ते खा जाएंगे, रोगी मनुष्य को सारी रात खाना नहीं मिलेगा।

मृत्युञ्जय बन्द कमरे के भीतर पागल की भाँति सिर धुनने लगा, दरवाजे पर पाँव की ठोकर मारने लगा, परन्तु हम लोग उससे रत्तीभर विचलित नहीं हुए। स्वदेश के कल्याण के लिए सब-कुछ अकातर-भाव से सहकर उसे घसीट कर खींचते हुए चल दिए।

'चलदिए' इसलिए कह रहा हूँ कि मैं भी बराबर उनके साथ था, परन्तु मुझमें कहीं एक दुर्बलता थी, मैं उसके शरीर से हाथ नहीं लगा सका—अपितु जैसे भीतर-ही-भीतर रो उठा। उसने अत्यन्त अनुचित कार्य किया है एवं उसे गाँव से बाहर निकाल देना ही उचित है, परन्तु फिर भी हम लोग कोई अच्छा काम कर रहे हैं, यह भी किसी तरह समझ में नहीं आया, परन्तु मेरी बात रहने दो। आप यह न सोचलें कि देहात में उदारता का नितान्त अभाव होता है। बिल्कुल नहीं। अपितु बड़े आदमी होने पर हम लोग ऐसी उदारता प्रकट करते हैं कि सुनकर आप लोग अवाक् रह जाएँगे।

यह मृत्युञ्जय यदि उसके हाथ से भात खाने का अक्षम्य अपराध नहीं करता तो हमलोगों को इतना क्रोध नहीं आता। और कायस्थ के लड़के का सपेरे की लड़की के साथ निकाह—यह तो एक हँस कर उड़ा देने की बात है—परन्तु गजब कर दिया इस भात खाने ने! भले ही हो वह ढाई महीने से बीमार, भले ही हो वह शय्याशायी, परन्तु इसी से भात! पूड़ी नहीं, सन्देश नहीं, बकरे का मांस नहीं! भात खाना तो अन्न-पाप है। वह तो फिर सचमुच ही माफ नहीं किया जा सकता। इसलिए देहात के लोग सङ्कीर्ण हृदय नहीं हैं। 'चार-कोस-

पैदल-चली' जो विद्या जिन सब लड़कों के पेट में हैं, वही तो एक दिन बड़े होकर समाज के शिरोमणि होते हैं। देवी वीणापाणि के वर से उनमें सङ्कीर्णता किस तरह आ सकती है ?

यही देखो, इसके कुछ दिन बाद ही प्रातःस्मरणीय स्वर्गीय मुखोपाध्याय महाशय की विधवा पुत्रवधू मानसिक-वैराग्य से दो वर्ष तक काशीवास करके जब लौटीं, तब निन्दक लोग कानाफूँसी करने लगे कि आधी सम्पत्ति इस विधवा की है एवं पीछे उसके हाथ से न निकल जाय, इस भय से छोटेबाबू बड़े प्रयत्न और बड़े परिश्रम के बाद बहूजी को जहाँ से लौटा लाए हैं, वह काशी ही होगी। जो भी हो, छोटेबाबू ने अपनी स्वाभाविक उदारता से, गाँव की पञ्चायती-पूजा में दो सौ रुपए दान देकर, गाँव के पाँच ब्राह्मणों को दक्षिणा सहित उत्तम फलाहार देने के पश्चात् प्रत्येक श्रेष्ठ ब्राह्मण के हाथ में जब एक-एक कांसे का गिलास देकर विदा किया, तब धन्य-धन्य हो उठी। यही क्यों, मार्ग में आते हुए बहुत से लोग देश एवं विदेश के कल्याण के निमित्त कामना करने लगे, "ऐसे जो सब बड़े आदमी हैं, उनके घर-घर में प्रतिमास ऐसे ही शुभ अनुष्ठान क्यों नहीं हुआ करते ?"

परन्तु रहने दो, हमारे महत्व की कहानियाँ अनेक हैं। युग-युग से सञ्चित होकर प्रायः प्रत्येक ग्रामवासी के द्वार पर वे स्तूपाकार हो उठीं हैं। इस दक्षिण बंगाल के अनेक गाँवों में बहुत दिनों तक घूमकर गर्व करने योग अनेकों बड़ी-बड़ी घटनाएँ प्रत्यक्ष देखी हैं। चरित्र-बल में, धर्म-बल में, सामाजिक-बल में और विद्या के बल में, शिकायत बिलकुल पूरी होगई है, अब केवल अंग्रेजों को कस कर गाली दे सका तो देश का उद्धार हो जाय।

लगभग एक वर्ष हो गया। मच्छरों का काटना और नहीं सहा गया तब सन्यासी गिरि से सब को इस्तीफा देकर घर लौट आया हूँ। एक दिन दोपहर के समय दो कोस दूर मालपाड़े में हो कर चला जा

रहा था, अचानक देखा, एक झौंपड़ी के दरवाजे पर बैठा है मृत्युञ्जय। उसके माथे पर गेरुआ रंग की पगड़ी, बड़ी दाढ़ी और केश, गले में रुद्राक्ष और कौड़ियों की माला—कौन कह सकता है यह हमारा वही मृत्युञ्जय है ! कायस्थ का लड़का एक वर्ष के भीतर ही जाति खोकर एकदम भलीभाँति सपेरा बन गया है। मनुष्य कितनी जल्दी अपने चौदह पुरखों की जाति को विसर्जित कर, एक अन्य जाति में चला जाता है, यह एक आश्चर्यजनक घटना है। ब्राह्मण का लड़का मेहतरानी के साथ विवाह कर मेहतर होगया और उनका व्यवसाय अपना लिया, यह शायद आप सभी ने सुना होगा। मैंने श्रेष्ठ ब्राह्मण के लड़के को ऐन्ट्रेन्स पास कर लेने के बाद भी डोम की लड़की से विवाह कर डोम बन जाते हुए देखा है। इस समय वह सूप-डलियाँ बना कर बेचा करता है, सूअर चराता है। भले कायस्थ के लड़के को कसाई की लड़की के साथ विवाह कर कसाई हो जाते हुए भी देखा है। आज वह अपने हाथ से गाय काट कर बेचता है—उसे देखकर कौन कह सकता है कि किसी समय वह कसाई से भिन्न और कुछ होगा। परन्तु सबका वही एक कारण है। मैं तभी तो सोचता हूँ, इस प्रकार जो आसानी से पुरुष को खींच कर नीचे गिरा सकती हैं, वे क्या उसी प्रकार हँसते-खेलते ऊँचा नहीं चढ़ा सकतीं। जिन ग्रामवासी पुरुषों की प्रशंसा के लिए आज पंच-मुख हो उठा हूँ, यह गौरव क्या केवल अकेले उन्हीं को मिलना चाहिए ? क्या अपने ही बल पर वे इतनी जल्दी नीचे की ओर गिरते चले जाते हैं। अन्दर की ओर से क्या उन्हें तनिक भी उत्साह, तनिक भी सहायता नहीं मिलती ?

परन्तु रहने दो। झौंक में आकर शायद अनाधिकार-चर्चा कर बैठूँगा, परन्तु मुझे कठिनाई यही आ पड़ी है कि मैं किसी भी तरह नहीं भूल पाता कि देश के नब्बे प्रतिशत नर-नारी इन गाँवों में रहकर ही मनुष्य बनते है एवं इसीलिए हम लोगों को कुछ करना ही चाहिए। खैर, कह रहा था कि देख कर कौन कह सकता है कि यह वही

मृत्युञ्जय है। परन्तु मुझे उसने खातिर करके बैठाया। विलासी पोखर से पानी भरने गई थी, मुझे देखकर वह भी बहुत खुश होकर बार-बार कहने लगी, 'तुम्हारे न आने से वे लोग रात में मुझे मार ही डालते। मेरे लिए न जाने तुमने कितनी मार खाई होगी।"

बातों ही बातों में सुना, दूसरे दिन से ही वे यहाँ आकर क्रमशः घर बनाकर रहने लगे हैं एवं सुखी हैं, यह बात मुझे बताने की आवश्यकता नहीं थी, केवल उन लोगों के चेहरे की ओर देख कर ही मैं समझ गया था।

तो भी सुना, आज कहीं से उन्हें साँप पकड़ने के लिए बयाना आया है और वे तय्यार बैठे हैं, मै भी उनके साथ जाने के लिए उछल पड़ा। बचपन से ही मुझे दो बातों का बड़ा शौक रहा है। एक तो गोखुरा काला साँप पकड़ कर पालना, और दूसरा मन्त्र सिद्ध करना।

सिद्ध होने का उपाय अब तक ढूँढ़ कर भी नहीं निकाल सका था, परन्तु मृत्युञ्जय को उस्ताद के रूप में पा लेने की आशा से आनन्द से उत्फुल्ल हो उठा। वह अपने सुप्रसिद्ध ससुर का शिष्य है, अतः बड़ा आदमी है। मेरा भाग्य अचानक ऐसा चमक उठेगा, इसे कौन सोच सकता था ?

'परन्तु काम कड़ा है एवं भय का भी है' कह कर पहले उन दोनों ने आपत्ति की, किन्तु मैंने ऐसी ज़िद पकड़ली कि महीने भर के भीतर ही मुझे शागिंद बना लेने के अतिरिक्त मृत्युञ्जय को और कोई मार्ग ही नहीं मिला। साँप पकड़ने का मन्त्र और तरकीब सिखाकर एवं भुजा में औषधियों वाला एक ताबीज बाँधकर बाकायदा सपेरा बना दिया।

मन्त्र क्या था, जानते हैं ? उसका अन्तिम भाग मुझे याद है—

ओरे केवट तू मनसा का वाहन—
मनसा देवी मेरी मा—
उलट पलट पाताल-फेड़ -

ढोंढा का विष तू लेले, अपना विष ढोंढा को दे
—दूधराज, मणिराज !
किस की आज्ञा से—विष हरी की आज्ञा से !

इसका अर्थ क्या है, सो मैं नहीं जानता—कारण जो इस मन्त्र के स्रष्टा ऋषि थे—अवश्य ही कोई-न-कोई थे—उनका साक्षात्कार कभी नहीं मिला।

अन्त में एक दिन इस मन्त्र की सत्य-मिथ्या की चरम मीमांसा होगई, परन्तु जबतक नहीं हुई, तबतक साँप पकड़ने के लिए मैं चारों ओर प्रसिद्ध होगया। सब लोग कहने लगे, हाँ, न्याड़ा एक गुणी आदमी है। सन्यासी वेष में कामाख्या जाकर सिद्ध हो आया है। इतनी आयु में इतना बड़ा उस्ताद बन जाने से घमण्ड में भर कर मेरे पाँव ही धरती पर नहीं पड़ते थे, यह हालत होगई।

विश्वास नहीं किया केवल दो व्यक्तियों ने। मेरा जो गुरु था वह तो अच्छी-बुरी कोई बात नहीं कहता था। परन्तु विलासी बीच-बीच में मुँह बिचका कर हँसती हुई कहती, "ठाकुर, ये सब भयंकर जानवर हैं, जरा सावधानी से हिलाया-डुलाया करो।" वस्तुतः विष-दन्त तोड़ने, साँप के मुँह से विष निकालने के काम ऐसी लापरवाही से करने लगा था कि वह सब याद करके मेरा शरीर आज भी काँप उठता है।

असल बात यह है कि साँप पकड़ना भी कठिन नहीं है एवं पकड़े हुए साँप को दो-चार दिन हाँडी में बन्द रखने के बाद उसके विष-दन्त भी तोड़े जाँय या न तोड़े जाँय, किसी भी तरह वह काटना नहीं चाहता। फन उठा कर काटने का बहाना भी करेगा, भय दिखाएगा, परन्तु काटेगा नहीं।

बीच-बीच में हम गुरु-शिष्यों के साथ विलासी तर्क करती। सपेरों का सबसे लाभदायक व्यवसाय है जड़ी-बूटी बेचना, जिसे देखते

ही साँप को भागने का रास्ता नहीं मिलता। परन्तु उससे पहले एक मामूली-सा काम करना पड़ता है। जिस साँप को जड़ी दिखा कर भगाना हो, उनके मुँह को एक लोहे की सलाख गरम करके कई बार दाग देनी चाहिए। तदुपरान्त उसे सलाख दिखाओ या एक सींक ही दिखादो, उसे कहीं भाग कर जान बचाने की ही सूझेगी। इस काम के विरुद्ध विलासी भयानक आपत्ति करती हुई मृत्युञ्जय से कहती, "देखो, इस तरह मनुष्यों को ठगना मत।"

मृत्युञ्जय कहता—"सभी करते हैं इसमें दोष क्या है?"

विलासी कहती—"करने दो सबको। हमलोगों को तो खाने-पीने की फिक्र नहीं है, फिर हम क्यों झूँठ-मूँठ लोगों को ठगने जाएँ।"

एक और बात मैंने बराबर लक्ष्य की। साँप पकड़ने का बयाना आते ही विलासी अनेकों प्रकार की बाधा देने का प्रयत्न करती—"आज शनिवार है, कल मंगलवार है।" ऐसे कितने ही। मृत्युञ्जय के उपस्थित न होने पर तो वह एकदम भगा ही देती, परन्तु उपस्थित रहने पर नक़द रुपए का लोभ संवरण नहींकर पाता और मुझेतो एक तरह का नशा-सा उठ खड़ा हुआ था। अनेकों प्रकार से उसे उत्तेजित करने की चेष्टा में कमी नहीं रहने देता। वस्तुतः इसमें मजे के अतिरिक्त कहीं भय भी है, यह बात मेरे मन में ठहरती ही नहीं—परंतु इस पाप का दंड एक दिन मुझे अच्छी तरह भोगना पड़ा।

उस दिन डेढ़-कोस की दूरी पर एक ग्वाले के घर साँप पकड़ने गया था। विलासी हमेशा साथ जाती थी, आज भी साथ थी। मिट्टी की मढ़ैया में थोड़ी-सी खोज करते ही एक बिल का चिह्न मिल गया। हममें से किसी ने नहीं देखा, परंतु विलासी सपेरे की लड़की थी—उसने झुक कर कुछ कागज के टुकड़े उठाते हुए मुझ से कहा, "ठाकुर, जरा सावधानी से खोदना। एक ही साँप नहीं है, एक जोड़ा तो है

ही, शायद और भी अधिक हों।

मृत्युञ्जय बोला, "ये लोग तो कहते हैं एक ही आकर घुसा है। एक ही दिखाई दिया है।"

विलासी ने कागज दिखाते हुए कहा, "देखते नहीं, उन्होंने यहाँ रहने की जगह बनाली है!" मृत्युञ्जय ने कहा, "कागज तो चूहे भी ला सकते हैं?" विलासी ने कहा, "दोनों बातें हो सकती हैं—परंतु दो साँप है, मैं कहती हूँ।"

वास्तव में विलासी की बात ही ठीक निकली; एवं मर्मान्तिक भाव से उस दिन ठीक निकली। दस मिनट के भीतर ही एक जबर्दस्त 'खरिश गोखुरा' साँप पकड़ कर मृत्युञ्जय ने मेरे हाथ में दिया। परंतु उसे पेटी में बंद करके लौटते न लौटते ही मृत्युञ्जय 'ओह' कह कर निःश्वास छोड़ता हुआ बाहर आ खड़ा हुआ। उसकी हथेली के पीछे से झर-झर कर खून बह रहा था।

पहले तो सब जैसे हतबुद्धि हो गए। कारण साँप पकड़ने जाते समय वह भागने के लिए व्याकुल न होकर, बिल से एक हाथ मुँह बाहर निकाल कर डस ले, ऐसी अमानवीय घटना जीवन में केवल एकमात्र यहीं देखी थी। दूसरे ही क्षण विलासी चीत्कार करती हुई दौड़ी और आँचल से उसका हाथ बाँध दिया। एवं जितनी तरह की जड़ी-बूटी वह संग लाई थी, उन सबको चबाने के लिए दे दिया। मृत्युञ्जय का अपना ताबीज तो था ही, उसके ऊपर मेरा ताबीज खोल कर भी उसके हाथ में बाँध दिया; आशा थी कि विष इससे ऊपर नहीं चढ़ेगा। एवं मैं अपने उसी 'विषहरी, की आज्ञा से' मन्त्र का जोर-जोर से बारम्बार पाठ करने लगा। चारों ओर भीड़ जमा हो गई एवं इस अंचल में जहाँ भी जितने गुणी व्यक्ति थे, सब को खबर देने के लिए चारों ओर आदमी दौड़ पड़े। विलासी के पिता को भी समाचार देने के लिए आदमी गए।

मेरे मन्त्र पढ़ने में विराम नहीं था। परंतु ठीक सेहत दिखाई नहीं दी; तथापि आवृत्ति समान रूप से चलने लगी, परंतु पन्द्रह-बीस मिनट बाद भी जब मृत्युञ्जय ने एकदम उल्टी कर दी, तब विलासी धरती पर एकदम पछाड़ खाकर गिर पड़ी। मैं भी समझ गया, विषहरी की दुहाई शायद अब काम नहीं देगी।

निकटवर्त्ती और भी दो-चार उस्ताद आ पहुँचे अब हम लोग कभी एक साथ और कभी अलहदा-अलहदा तेतीस करोड़ देवी-देवताओं की दुहाई पढ़ने लगे। परंतु विष ने दुहाई नहीं मानी, रोगी की हालत क्रमशः खराब होने लगी। जब देखा, अच्छी बातों से काम नहीं चलेगा, तब तीन-चार ओझाओं ने मिलकर विष को ऐसी अकथ्य-अश्राव्य गाली देना शुरू किया कि विष के कान होते तो मृत्युञ्जय तो मृत्युञ्जय, उस दिन वह देश छोड़कर भाग जाता—परंतु किसी से भी कुछ नहीं हुआ। और भी आध घण्टे तक जूझा-जूझी के बाद, रोगी ने अपने माता-पिता के दिए हुए मृत्युञ्जय नाम, अपने श्वसुर द्वारा दिए गए मन्त्र-औषधि, सबको मिथ्या प्रमाणित करते हुए इहलोक की लीला समाप्त कर दी। विलासी अपने पति के मस्तक को गोद में लिए बैठी थी, वह जैसे एकदम पत्थर हो गई।

खैर, उसके दुःख की कहानी को और नहीं बढ़ाऊँगा। केवल यह कह कर समाप्त करता हूँ कि वह सात दिन से अधिक जीवित रह कर वियोग का दुःख नहीं सह सकी। मुझ से केवल एक दिन बोली थी, "ठाकुर, मेरे माथे की सौगन्ध है, यह सब तुम अब कभी मत करना।"

मेरा ताबीज-कवच तो मृत्युञ्जय के साथ ही कब्र में चला गया था, रह गई थी केवल विषहरी की आज्ञा। परंतु वह आज्ञा कोई मजिस्ट्रेट की आज्ञा नहीं है, एवं साँप का विष किसी बंगाली का विष नहीं है, इसे मैं भी समझ गया था।

एक दिन जाकर सुना, घर में तो ज़हर की कमी नहीं थी, विलासी आत्महत्या करके मर गई है एवं शास्त्रानुसार वह अवश्य ही नरक में गई है। परंतु जहाँ भी जाए, मेरा स्वयं का जब जाने का समय आएगा तब, ऐसे किसी एक नरक में जाने के प्रस्ताव से मैं पीछे नहीं हटूँगा, यही कह सकता हूँ।

चाचा साहब बगीचे पर सोलहों आने दखल जमा कर अत्यन्त विज्ञ की भाँति चारों ओर कहते फिरने लगे, यदि उसकी अपघात मृत्यु न होती तो और किसकी होती ? पुरुष वैसी एक छोड़कर दस क्यों न करे, इससे तो कुछ बनता-बिगड़ता नहीं—बहुत होगा तो थोड़ी-सी निन्दा ही हो जाएगी—परंतु उसके हाथ का भात खाकर क्यों मरा ? स्वयं भी मरा, मेरा भी माथा नीचा कर गया। न पाई एक आग की लकड़ी, न पाया एक पिण्ड, न हुई कुछ श्राद्ध-शान्ति !

गाँव के लोग एक स्वर से कहने लगे, "इसमें भी क्या सन्देह है ? अन्न-पाप ! बाप रे ! इसका क्या कोई प्रायश्चित्त है !"

विलासी की आत्महत्या की घटना भी बहुतों के लिए परिहास का विषय बन गई। मैं प्रायः सोचता हूँ, यह अपराध है तो उन दोनों ने ही किया था, परंतु मृत्युञ्जय तो गाँव का ही लड़का था, देहात के तेल-पानी से ही इतना बड़ा हुआ, तो भी इतने बड़े दुस्साहस के काम में उसे जिस वस्तु ने प्रवृत्त किया, उसे तो कोई एक बार आँख खोल कर भी नहीं देख पाया।

मुझे लगता है, जिस देश के स्त्री-पुरुषों के बीच परस्पर हृदय जीत कर विवाह करने की प्रथा नहीं है, अपितु वह निन्दा की वस्तु है; जिस देश के स्त्री-पुरुष आशा करने के सौभाग्य व आकांक्षा करने के भयंकर आनन्द से सदैव के लिए वंचित हैं, जिन्हें विजय का गर्व,

पराजय की व्यथा—इनमें से किसी को भी जीवन में एक बार भी नहीं वहन करना पड़ता; जिन्हें भूल करने का दुःख एवं भूल न करने का आत्मप्रसाद—कोई भी बला नहीं है; जिनका प्राचीन और बहुदर्शी विज्ञ-समाज सब प्रकार के झगड़ों से अत्यन्त सावधान होकर देश के लोगों को अलग रखता हुआ, जीवन भर केवल भले बने रहने की ही व्यवस्था कर चुका है, इसी से विवाह का संस्कार जिनके लिए केवल एक कन्ट्राक्ट (Contract) है—चाहे वैदिक मन्त्रों से कितना ही डोकुमेन्ट (Document) शुदा हो, उस देश के लोगों में सामर्थ्य नहीं है कि वे मृत्युञ्जय के अन्न-पाप के कारण को समझ सकें। विलासी का जिन्होंने मज़ाक उड़ाया था, वे सब साधु-गृहस्थ एवं साध्वी गृहिणी हैं—अक्षय सतीलोक को वे सभी प्राप्त करेंगी, इसे मैं भी जानता हूँ, परंतु उस सपेरे की लड़की जब एक पीड़ित, शय्या-गत रोगी को तिल-तिल करके जीत रही थी, उस समय के उस गौरव का कण भर भी शायद आज तक उनमें से किसी की आँखों में नहीं दीखा है। मृत्युञ्जय चाहे एक बहुत ही तुच्छ आदमी था, परंतु उसके हृदय को जीत कर अधिकार प्राप्त करने का आनन्द तो तुच्छ नहीं था, वह सम्पत्ति भी साधारण नहीं थी।

इस चीज़ को ही इस देश के लोगों के लिए समझ सकना कठिन है। मैं भूदेव बाबू के पारिवारिक प्रबन्ध को भी दोष नहीं दूँगा एवं शास्त्रीय तथा सामाजिक विधि-व्यवस्था की निन्दा नहीं करूँगा। करने पर मुँह के ऊपर कड़ा जवाब देते हुए जो लोग कहेंगे, 'यह हिन्दू-समाज अपनी विधि-व्यवस्था के जोर से ही इतनी शताब्दियों तक उपद्रवों के बीच बचा हुआ है', मैं उनकी भी अत्यन्त भक्ति करता हूँ। प्रत्युत्तर में, मैं कभी नहीं कहूँगा, जीवित रहना ही चरम-सार्थकता नहीं है; एवं अतिकाय हाथी तक लोप हो गए हैं, परंतु तिलचट्टे जीवित हैं। मैं केवल यही कहूँगा कि बड़े आदमियों के नन्दगोपाल की भाँति दिन-रात आँख-ही-आँख और

गोद-ही-गोद में रखने से तो वह अच्छा रहेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं, परंतु बिल्कुल तिलचट्टे की भाँति बचाए रखने की अपेक्षा एक-आध बार गोद से नीचे उतार कर और भी पाँच आदमियों की तरह दो-एक पाँव पैदल चलने देने से भी प्रायश्चित्त करने जैसा पाप नहीं होगा।

महेश

१

गाँव का नाम काशीपुर है। गाँव छोटा है, जमींदार उससे भी छोटा है, फिर भी उसके दबदबे से प्रजा चूँ तक नहीं कर पाती—ऐसा प्रताप है।

छोटे लड़के की जन्मतिथि की पूजा थी। पूजा समाप्त कर तर्करत्न दोपहर के समय घर लौट रहे थे। वैशाख समाप्त होने को आया, परंतु बादलों की छाया तक कहीं नहीं है; अनावृष्टि के कारण आकाश से जैसे अग्नि झर-झर कर गिर रही है।

सामने का दिगन्तव्यापी मैदान कड़ी धूप से सूखकर फटने लगा है और उन लाखों दरारों में से धरती की छाती का रक्त निरंतर धुँआ बन करके उड़ा जा रहा है। अग्निशिखा की भाँति उसकी साँप जैसी लहराती हुई ऊर्द्धगति की ओर देखते ही सिर चकराने लगता है जैसे नशा आ गया हो।

इसी (मैदान) की सीमा में सड़क के सहारे गफूर जुलाहे का घर है। उसकी दीवाल गिर जाने से आँगन सड़क से आ मिला है एवं अन्तःपुर की-

लज्जा-आबरू पथिकों की करुणा के समक्ष आत्मसमर्पण कर निश्चिन्त हो चुकी हैं।

सड़क के सहारे एक वृक्ष की छाया में खड़े होकर तर्करत्न ने उच्च स्वर से पुकारा, "ओरे, ओ गफूरा, कहता हूँ, घर में है ?"

उसकी दसेक वर्ष की लड़की ने दरवाजे के पास आकर खड़े होते हुए कहा, "किसे ? बापू को ? बापू को ज्वर है।"

"ज्वर ! बुला दे अभागे को ! पाखण्डी ! म्लेच्छ !"

चीख-पुकार से गफ़र मियाँ घर से बाहर निकल कर ज्वर में काँपते-काँपते पास आ खड़े हुए। टूटी हुई दीवाल से सटा हुआ एक पुराना बबूल का पेड़ है। उसके नीचे बँधा था एक साँड़। तर्करत्न दिखाते हुए बोले, "यह क्या हो रहा है, सुनूँ तो सही? यह हिन्दुओं का गाँव है। जमींदार ब्राह्मण है, यह ख्याल है ?" उनका चेहरा क्रोध और धूप से रक्तवर्ण हो रहा था, अतः उस मुँह से गरम और तीखी बात ही बाहर निकलेगी, परंतु कारण न समझ सकने से गफ़र केवल देखता रह गया।

तर्करत्न बोले, "सबेरे जाते समय बँधा देख गया, दोपहर को लौटते समय देखता हूँ वैसा ही बँधा हुआ है। गोहत्या होने पर मालिक तुझे जीवित कब्र में गढ़वा देंगे। वे ऐसे-वैसे ब्राह्मण नहीं हैं।"

"क्या करूँ पण्डितजी, बड़ी लाचारी में पड़ गया हूँ। कुछ दिन से शरीर में ज्वर है, पगहा पकड़ कर थोड़ा बहुत चरा लाता—सो माथा चक्कर खाने लगता है।"

"तब छोड़ दे न, स्वयं ही चर आया करेगा।"

"कहाँ छोड़ूँगा पण्डितजी, लोगों के धान अभी तक सब झाड़े नहीं गए हैं, खलिहान में पड़े हैं। पुआल के भी अभी तक गट्ठे नहीं बाँधे गए, मैदान के घास-पात सब जल गए—कहीं भी एक मुट्ठी घास नहीं

है। किसी के धान में मुँह डालेगा, किसी का पुआल बरबाद कर डालेगा—कैसे छोड़ दूँ पण्डितजी ?"

तर्करत्न ने कुछ नरम होकर कहा—"नहीं छोड़ता तो कहीं छाया में बाँधकर दो आँटी पुआल ही डालदे न, तबतक वही चबाएगा। तेरी लड़की ने भात नहीं राँधा। माँड़ का पानी दे देना एक लोटा, बना रहेगा।"

गफ़र ने जवाब नहीं दिया। निरुपाय की भाँति तर्करत्न के मुँह की ओर देखते हुए उसके मुँह से केवल एक दीर्घ निःश्वास निकल गया।

तर्करत्न बोले—"सो भी नहीं है शायद ? पुआल का क्या कर दिया। हिस्से में जो मिला उस सबको बेचकर पेटाय नमः ? बैल के लिए एक आँटी भी नहीं छोड़ रक्खी ? बेटा कसाई!"

इस निष्ठुर अभियोग से गफूर का जैसे कण्ठ अवरोध होगया। क्षण भर बाद धीरे-धीरे कहा—"खलिआन से पुआल इसबार हिस्सेमें मिला था, परन्तु गई साल के बक़ाया कह कर जमींदारजी ने सब रखवा लिया। रो-पीटकर हाथ-पाँव जोड़ कर कहा—' बाबूजी आप हाकिम हैं, आपका राज्य छोड़कर और कहाँ भाग जाऊँगा, मुझे पाँच-दस पुआल की आँटी ही न हो तो दे दीजिए। छप्पर में फूँस नहीं है। एक कोठरी है, बाप-बेटी को रहना है, सो भी न होगा तो ताड़-पत्तों से ही इस साल की बरसात को काट दूँगा। परन्तु खाए बिना मेरा महेश मर जाएगा।"

तर्करत्न ने हँसकर कहा—"ऐसा ! और अपने शौक से इसका नाम रख छोड़ा है महेश ! हँसी नहीं रुकती।"

परंतु यह व्यंग गफ़र के कान में नहीं पड़ा, वह कहने लगा, "परन्तु हाकिम को दया नहीं आई। दो महिने की खुराक लायक धान हमें दे दिया, परन्तु सारा पुआल सरकार में जमा होगया, उस बेचारे

को तिनका तक नहीं मिला।" कहते-कहते उसका कण्ठ-स्वर अश्रुभार से भारी हो उठा; परन्तु तर्करत्न को उससे करुणा नहीं आई; कहा—"अच्छा आदमी है तू, ले रक्खा है तो देगा नहीं ? जमींदार क्या तुझे घर से खिलाएँगे ? तुम लोग तो रामराज्य में रह रहे हो। अधम है न, इसी से तो उनकी निन्दा करता फिरता है।"

गफ़ूर ने लज्जित होते हुए कहा—"मैं निन्दा क्यों करने लगा पण्डितजी, हम लोग उनकी बुराई नहीं करते। परन्तु दूँ कहाँ से, बताइए ? चार बीघे खेत साझे में जोतता हूँ, परन्तु लगातार दो वर्ष तक अकाल पड़ गया, खेत का धान खेत में सूख गया। बाप-बेटी को दोनों समय पेट भर कर खाने को भी नहीं मिलता। घर की ओर देखिए, बरसात होती है तो लड़की को लेकर एक कोने में बैठे हुए रात बितानी पड़ती है, कहीं पाँव फैला कर सोने की भी जगह नहीं। महेश की ओर देखिए, हड्डियाँ निकल आई हैं, दे दीजिए न पण्डितजी थोड़ा-सा पुआल, उधार दे दीजिए। दो-चार दिन इसे पेट भर कर खिला तो दूँ। आपके यहाँ चार-चार टालें लग रही हैं, उस दिन मैं देख आया हूँ, थोड़ा-सा दे देने पर आपको कुछ पता भी नहीं चलेगा। बड़ा सीधा जानवर है, मुँह से कुछ नहीं कहता, केवल टुकुर-टुकुर देखता रहता है और आँखों से आँसू बहाता रहता है।"

तर्करत्न ने कहा—"उधार तो ले लेगा, परन्तु चुकाएगा कैसे यह तो बता ?"

गफ़ूर ने आशान्वित होकर व्यग्र स्वर में कहा—"जिस तरह बनेगा मैं चुका दूँगा पन्डितजी, धोखा नहीं दूँगा आपको।"

तर्करत्न ने मुँह से एक प्रकार का शब्द निकाल गफ़ूर के व्याकुल कण्ठ का अनुकरण करते हुए कहा—"धोखा नहीं दूँगा। जिस तरह बनेगा चुका दूँगा। रसिक नागर बन रहा है। चल-चल हट, रास्ता छोड़। घर जाना है, बहुत देर हो गई है।"

इतना कह कर मुस्कराते हुए क़दम बढ़ाया ही था कि अचानक भय से पीछे हटते हुए क्रुद्ध होकर बोले—"अरे मर, सींग हिला कर मारने आ रहा है, सींग मारेगा ?"

गफ़ूर उठ कर खड़ा हो गया। पण्डित जी के हाथ में फल-मूल और भीगे हुए चावलों की पोटली थी, उसकी ओर संकेत करते हुए गफ़ूर बोला—"गन्ध मिल गई है न उसे, इसीलिए कुछ खाने को माँगता है।"

"खाने को माँगता है ? ठीक जैसा तू स्वयं गँवार है, वैसा ही बैल है ! पुआल तो मिलता नहीं, केले-चावल खाने को चाहिए। हटा, हटा, रास्ते से एक ओर हटाकर बाँध। कैसे सींग हैं, किसी दिन किसी की जान न ले बैठे !" कहते हुए पण्डितजी एक ओर से बचकर निकल गए।

गफ़ूर उनकी ओर से दृष्टि हटा कर कुछ देर तक महेश की ओर टकटकी लगाए देखता रहा। उसकी गहरी काली आँखें वेदना और भूख से भरी हुई थीं। उसने कहा—"तुझे मुट्ठी भर भी नहीं दिया ? उन लोगों के पास बहुत है, फिर भी किसी को देते नहीं। न दें।" कहते-कहते उसका कण्ठ भर आया और आँखों से टप्-टप् आँसू गिरने लगे। वह महेश के निकट आकर चुपचाप उसकी गर्दन, मस्तक और पीठ पर हाथ फेरता हुआ धीरे से कहने लगा—"महेश, तू मेरा लड़का है, तू हम लोगों को आठ साल तक खिलाता-पिलाता रहा है, अब बूढ़ा हो गया है, मैं तुझे भरपेट खिला भी नहीं सकता, परन्तु तू तो जानता है, मैं तुझे कितना प्यार करता हूँ।"

महेश ने इसके उत्तर में केवल गर्दन बढ़ा कर आराम से आँखें बन्द कर लीं। गफ़ूर अपने आँसुओं को महेश की पीठ पर पोंछता हुआ उसी प्रकार अस्फुट स्वर में कहने लगा—"ज़मीदार ने तेरे मुँह का कौर छीन लिया, श्मशान के समीप जो चरने की जगह थी, उसे

भी पैसे के लोभ से ठेके पर उठा दिया। ऐसे अकाल में तुझे किस तरह जीवित रक्खूँ, बोल ? खुला छोड़ देने से तू दूसरों के ढेर पर मुँह मारेगा, लोगों के केले के पेड़ तोड़ कर खा जाएगा—तेरे लिए अब मैं क्या करूँ ? अब मेरे शरीर में भी शक्ति नहीं है; गाँव का कोई आदमी अब तुझे चाहता नहीं; लोग कहते हैं कि अब तुझे बेच देना चाहिए।" मन-ही-मन इन शब्दों को उच्चारण करते ही गफ़ूर की आँखों से टप्-टप् आँसू गिरने लगे। उन्हें हाथ से पोंछ कर वह इधर-उधर देखने लगा, तदुपरान्त टूटे हुए छप्पर से थोड़ा-सा पुराना मैला भद्दा फूँस खींच लाया। उसे महेश के सामने रखता हुआ धीरे से बोला—"ले, जल्दी से थोड़ा-बहुत खा ले, देर हो जाने से फिर...।"

"बापू ?"

"क्यों बेटी ?"

"भात खा जाओ", कह कर अमीना घर से निकलकर दरवाजे पर आ खड़ी हुई। एक क्षण देखते रहने के बाद कहा—"महेश को फिर छप्पर का फूँस दिया है, बापू ?"

ठीक इसी बात से वह डर रहा था, लज्जित होकर बोला—"सड़ा-गला छप्पर है बेटी, स्वयं ही झरा जा रहा है।"

"मैंने जो भीतर से सुना था बापू, तुमने खींच कर बाहर निकाला है।"

"नहीं बेटी, खींच कर तो नहीं निकाला पर...।"

"परन्तु दीवाल जो गिर जाएगी, बापू।"

गफ़ूर चुप रह गया। एक कोठरी को छोड़कर और सब टूट-फूट गया है एवं इसी तरह करने से आगामी बरसात में यह भी नहीं टिकेगा, इसे स्वयं उसकी अपेक्षा और कौन अधिक जानता है ? फिर यह उपाय भी भला कितने दिन चलेगा !

लड़की ने कहा—"हाथ धोकर भात खाने जाओ बापू, मैंने परोस दिया है।"

गफ़ूर ने कहा—"माँड़ तो जरा दे, बेटी। एक बार खिलाकर ही आऊँ।"

"माँड़ तो आज नहीं हैं बापू, हाँड़ी में ही रह गया।"

"नहीं है ?" गफ़ूर चुप रह गया। दुख के दिनों में थोड़ी-सी भी चीज नष्ट नहीं की जाती, यह दस वर्ष की लड़की भी इसे समझ गई है। हाथ धोकर वह घर के भीतर जा खड़ा हुआ। एक पीतल की थाली में पिता का खाना सजाकर कन्या ने अपने लिए एक मिट्टी की तश्तरी में भात परोस लिया था। देख-देखकर गफ़ूर ने धीरे-धीरे कहा—"अमीना, मेरे शरीर को फिर जाड़ा लग रहा है, बेटी। ज्वर होते हुए क्या खाना अच्छा होगा ?"

अमीना ने उद्विग्न मुख से कहा—"परन्तु तब तो कहा था कि बड़ी भूख लग रही है।"

"तब, तब शायद बुखार नहीं, था बेटी !"

"तो उठाकर रक्खे देती हूँ, शाम को खाओगे ?"

गफ़ूर सिर हिलाकर बोला—"परन्तु ठण्डा भात खाने पर तो रोग बढ़ेगा, अमीना ?"

अमीना ने कहा—"तब ?"

गफ़ूर ने न जाने कहाँ की चिन्ता करके अचानक इस समस्या की मीमांसा कर डाली; कहा—"एक काम कर न बेटी। न हो तो महेश को डाल आ। फिर रात को मेरे लिए मुट्ठी नहीं राँध सकेगी, अमीना ?" प्रत्युत्तर में अमीना मुँह उठा कर क्षण भर चुपचाप पिता के मुँह की ओर देखती रही, तदुपरान्त माथा नीचाकर धीरे-धीरे गर्दन हिलाती हुई बोली, "बना सकूँगी बापू !"

गफूर का चेहरा सुर्ख हो उठा। पिता और पुत्री के बीच यह जो एक छलना का अभिनय हो गया, उसे इन दो प्राणियों को छोड़कर एक और भी व्यक्ति ने शायद अन्तरिक्ष में बैठकर लक्ष्य-कर लिया।

२

पाँच-सात दिन बाद एक दिन पीड़ित गफूर चिंतित मुख से आँगन में बैठा था, उसका महेश कल-से अबतक घर नहीं लौटा था। वह स्वयं शक्ति हीन है, तभी अमीना सबेरे से ही सब जगह ढूँढ़ती फिर रही थी। सन्ध्या के समय उसने घर आकर कहा—"सुना है बापू, मानिक घोष ने हमारे महेश को थाने (बाड़े) में भिजवा दिया है।"

गफूर ने कहा—"हट् पगली!"

"हाँ बापू, सच, ! उनके नौकर ने कहा—अपने बाप से कह दे कि वह दरियापुर के मवेशीखाने में ढूँढ़े।"

गफूर स्तब्ध होकर बैठा रहा। महेश के बारे में उसने मन-ही-मन बहुत प्रकार की दुर्घटनाओं की कल्पना की थी, परन्तु ऐसी आशंका नहीं थी। वह जैसा निरीह था, वैसा ही गरीब भी, अतः कोई पड़ोसी उसे इतना बड़ा दण्ड दे सकेगा, यह भय उसे नहीं था—विशेषतः माणिक घोष। गौ-ब्राह्मणों पर उसकी भक्ति इस क्षेत्र में प्रसिद्ध है।

लड़की ने कहा—"दिन छिपने आ गया है, बापू, महेश को लाने नहीं जाओगे?"

गफूर बोला—"नहीं।"

"परन्तु उसने तो कहा है, तीन दिन हो जाने पर पुलिस के लोग उसे गौ-हाट में बेच डालेंगे।"

गफूर ने कहा—"बेच डालने दे।"

गौ-हाट ठीक क्या चीज है, अमीना उसे नहीं जानती थी, किन्तु महेश के सम्बन्ध में इसके उल्लेख मात्र से ही उसके पिता जिस प्रकार विचलित हो उठते हैं, इसे उसने बहुत बार लक्ष्य किया था, परन्तु आज वह और कोई बात न कहकर धीरे-धीरे चली गई।

रात के अँधेरे में गफूर ने छिपकर वंशी की दुकान पर जाकर कहा —"चाचा, एक रुपया देना होगा।' यह कहकर उसने अपनी पीतल की थाली बैठने के माचे के नीचे रखदी। इस वस्तु के वज़न आदि से वंशी सुपरिचित था। दो वर्ष के भीतर उसने पाँच बार इसे गिरवी रखकर एक-एक रुपया दिया था। अतएव आज भी आपत्ति नहीं की।

दूसरे दिन यथा स्थान फिर महेश को देखा गया—वही बबूल के पेड़ के नीचे का स्थान, वही, रस्सी, वही खूँटा, वही तृणहीन शून्य नाँद, वही क्षुधातुर काले नेत्रों में सजल उत्सुक दृष्टि! एक बूढ़ा-सा मुसलमान उसे अत्यन्त पैनी दृष्टि से देख रहा था। पास ही एक ओर दोनों घुटने मिलाए गफ़ूर मियाँ चुपचाप बैठे थे, परीक्षा समाप्त कर बुड्ढे ने चादर के छोर से दस रुपये का एक नोट बाहर निकाल कर उसकी तह खोलकर बार-बार मलते हुए, उसके पास आकर कहा—"अब तुड़ाऊँगा नहीं, यह पूरा का पूरा दिए देता हूँ, लो।"

गफ़ूर हाथ बढ़ाकर ग्रहण करते हुए उसी प्रकार चुपचाप बैठा रहा। जो दो आदमी सङ्ग आए थे, उनके द्वारा बैल की रस्सी खोलने का प्रयत्न करते ही वह अचानक उठकर खड़ा हो गया और उच्च कण्ठ से बोल उठा, "रस्सी से हाथ मत लगाना, कहे देता हूँ—खबरदार कहे देता हूँ, अच्छा न होगा।"

वे चौंक गए। बूढ़ा चकित होकर बोला—"क्यों?"

गफूर ने उसी भाँति नाराज़ होते हुए उत्तर दिया—"क्यों, फिर

क्या ? मेरी चीज, मैं नहीं बेचता—मेरी खुशी।" कहकर उसने नोट को अलग फेंक दिया।

वे लोग बोले—"कल रास्ते में आते समय बयाना जो ले आए थे ?"

"यह लो अपना बयाना वापिस !" कहकर उसने अंटी में से दो रुपये निकालकर झन्न से फेंक दिए। एक झगड़ा खड़ा होने का उपक्रम हो रहा है, देखकर बुड्ढे ने हँसकर धीर भाव से कहा—"दबाब डाल कर और दो रुपये ज्यादा लोगे, यही तो ? देओजी, जलपान के लिए उसकी लड़की के हाथ पर दो रुपये रख दो। बस, यही न ?"

"नहीं।"

"परन्तु इससे अधिक कोई एक अधेला भी नहीं देगा, यह जानते हो ?"

गफूर ने जोर से सिर हिलाकर कहा—"नहीं।"

बुड्ढे ने नाराज होकर कहा—"नहीं तो क्या ? चमड़े की ही तो कीमत मिलेगी, अन्यथा माल इसमें है ही क्या ?"

"तोबा ! तोबा !" गफूर के मुँह से अचानक एक कड़वी बात बाहर निकल गई एवं दूसरे ही क्षण वह भागकर अपने घर में घुसकर चिल्लाता हुआ धमकाने लगा कि यदि वे लोग तुरन्त ही गाँव छोड़कर नहीं चले जाएँगे तो जमींदार के आदमियों को बुलाकर जूते लगवाकर छोड़ेगा।

हङ्गामा देखकर वे लोग चले गए, परन्तु थोड़ी ही देर में जमींदार की बैठक से उनका बुलावा आया। गफ़ूर समझ गया, यह बात मालिक के कानों तक जा पहुँची है।

बैठक में भले-बुरे बहुत से लोग बैठे थे, शिबूबाबू आँखें लाल

करके बोले—"गफूरा, तुझे मैं क्या सजा दूँ, सोच नहीं पाता । कहाँ रह रहा है, जानता है ?"

गफूर ने हाथ जोड़कर कहा—"जानता हूँ । हमारे पास खाने को भी नहीं है, अन्यथा आज आप जो भी जुरमाना करते, मैं अस्वीकार न करता ।"

सभी चकित हो गए । इस आदमी को वे जिद्दी और बदमिजाज ही समझते आ रहे थे । वह रोता हुआ बोला—"ऐसा काम फिर कभी नहीं करूँगा, मालिक ।" कहकर उसने अपने दोनों हाथों से अपने दोनों कान मले एवं आँगन में एक ओर से दूसरी ओर तक नाक रगड़कर उठ खड़ा हुआ ।"

शिबूबाबू ने दर्याद्र कण्ठ से कहा—"अच्छा, जा-जा, हो गया । फिर कभी ऐसी विपरीत-बुद्धि मत बनना ।

विवरण सुनकर सब लोग रोमांचित हो उठे एवं यह महापाप जो केवल मालिक के पुण्य प्रभाव व एवं शासन-भय से निवारित हो गया, इस सम्बन्ध में किसी को सन्देह तक नहीं रहा । तर्करत्न उपस्थित थे । उन्होंने 'गो' शब्द की शास्त्रीय व्याख्या की एवं जिस कारण इस धर्म-ज्ञान-हीन म्लेच्छ जाति को गाँव के आस-पास कहीं भी बसने देना निषिद्ध बताया गया है, उसे प्रकट करते हुए सब के ज्ञान-नेत्र खोल दिए ।

गफूर ने किसी बात का जवाब नहीं दिया, यथार्थ प्राप्य* समझकर अपमान और सम्पूर्ण तिरस्कार को माथे पर उठाकर प्रसन्न चित्त से घर लौट आया । उसने पड़ोसियों के घर से माँड़ माँगकर महेश को पिलाया एवं उसके शरीर, सिर और सींगों पर बारम्बार हाथ फेरकर अस्फुट स्वर में न जाने कितनी बातें कहने लगा ।

---

* जो मिलना ही चाहिए ।

३

जेठ का महीना समाप्त हो आया। धूप की जिस मूर्ति ने एक दिन वैशाख के अन्त में आत्मप्रकाश किया था, वह कितनी भीषण व कितनी अधिक कठोर हो सकती है, इसे आजकल के आकाश की ओर देखे बिना अनुभव नहीं किया जा सकता। कहीं भी तनिक-सी करुणा का आभास तक नहीं है। कभी इस रूप का लेशमात्र भी परिवर्त्तन हो सकेगा, फिर किसी दिन यह आकाश बादलों के बोझ से स्निग्ध सजल दिखाई दे सकेगा, आज यह बात सोचने में जैसे भय लगता है। लगता है, समस्त प्रज्वलित आकाश में व्याप्त जो अग्नि दिन-रात झर रही है इसका अन्त नहीं है, इसका अन्त नहीं है, समाप्ति नहीं है—सब के अन्त तक जला कर भस्म न हो जाने तक यह रुक नहीं सकेगी।

ऐसे दिन में दोपहर के समय गफूर घर लौट कर आया। दूसरों के दरवाजे पर मेहनत-मजदूरी करने का उसे अभ्यास नहीं एवं केवल चार-पाँच दिन से उसका ज्वर रुका है; परंतु देह जैसी दुर्बल है, वैसी ही श्रान्त भी। तो भी वह आज काम की खोज में बाहर निकला था, परंतु यह प्रचण्ड धूप केवल उसके माथे पर होकर निकल गई, और कोई फल नहीं निकला। भूख-प्यास से और थकान से उसे प्रायः अँधेरा-सा दिखाई दे रहा था, आँगन में खड़े होकर पुकारा, "अमीना, भात हो गया री ?"

लड़की घर से धीरे-धीरे बाहर निकल खँटी पकड़ कर निरुत्तर खड़ी रही।

जवाब न पाकर गफूर ने चिल्लाते हुए कहा, "हुआ है भात ? क्या कहती है—नहीं हुआ ? क्यों, सुनूँ तो ?"

"चावल नहीं हैं, बापू !"

"चावल नहीं हैं ? सबेरे मुझ से क्यों नहीं कहा ?"

"तुम से रात को जो कहा था ।"

गफ़ूर मुँह बनाकर कण्ठस्वर का अनुकरण करता हुआ बोला, "रात को जो कहा था ! रात को कहने से किसे याद रहती है ?" अपने कर्कश कण्ठ से उसका क्रोध दुगुना बढ़ गया । मुँह को और बिगाड़ कर बोल उठा, "चावल रहेंगे कैसे ? रोगी बाप खाए चाहे न खाए, धींगरी लड़की को चार बार, पाँच बार भात गटकने को चाहिए ! अब से मैं चावलों को ताले में बंद करके बाहर जाऊँगा । दे, एक लोटा पानी दे, प्यास से छाती फट गई । बता, वह भी नहीं है ?"

अमीना उसी भाँति सिर झुकाए खड़ी रही । कुछ देर पश्चात् जब गफ़ूर समझ गया कि घर में पीने का पानी तक नहीं है, तब वह स्वयं को संभाल नहीं सका । उसने तुरंत पास जाकर उसके गाल पर चट से एक तमाचा जड़ दिया, कहा, "अभागिन लड़की, सारे दिन तू क्या करती है ? इतने लोग मरते हैं, तू नहीं मरती !"

लड़की ने कोई बात नहीं कही, मिट्टी के रीते घड़े को उठाकर उसी धूप में आँखें पौंछती-पौंछती चुपचाप बाहर निकल गई । उसके आँखों से ओझल होते ही गफ़ूर की छाती में शेल बिंध गया । मातृ-हीना लड़की को उसने किस तरह बड़ा किया है, इसे केवल वही जानता है । उसे याद आया, उसकी इस स्नेहशीला, कर्मपरायणा शान्त लड़की का कोई दोष नहीं है । खेत के थोड़े से धान के समाप्त हो जाने के बाद से उसे पेट भर कर दोनों समय अन्न भी नहीं मिलता, किसी दिन एक समय, किसी दिन वह भी नहीं । दिन में पाँच-छै बार भात खाना जैसा असंभव है वैसा ही झूँठ; और पीने का पानी न रहने का कारण भी उससे अविदित नहीं है । गाँव में जो दो-तीन पोखर हैं, वे एकदम सूख गई हैं । शिवचरण बाबू के पिछवाड़े की पोखर में जो थोड़ा-सा पानी है, वह हर किसी को नहीं

मिल पाता। अन्यान्य जलाशयों में दो-एक गड्ढे खोदकर जो कुछ पानी इकट्ठा होता है, उसके लिए जैसी खींचतान, वैसी ही भीड़ होती है। विशेषकर मुसलमान होने से यह छोटी-सी लड़की पास भी नहीं घुस पाती। घण्टों दूर खड़ी रहकर बहुत अनुनय विनय करने पर यदि कोई दया करके उसके बर्त्तन में थोड़ा-सा डाल दे तो उसी को वह घर ले आती है। यह सब बातें वह जानता है। शायद आज जल न रहा हो, अथवा छीना-झपटी के बीच किसी को लड़की पर कृपा करने का अवसर नहीं मिला हो—ऐसा ही कुछ एक रहा होगा। यह निश्चित समझ कर उसकी अपनी आँखों में भी पानी भर आया। इसी समय जमींदार का पियादा यमदूत की भाँति आकर आँगन में खड़ा हो गया और चिल्लाकर पुकारने लगा, "गफूरा घर है?"

गफ़ूर ने तीखे स्वर में उत्तर देते हुए कहा, "हूँ, क्यों?"

"बाबूजी बुला रहे हैं, चल।"

गफ़ूर ने कहा, "मेरा खाना-पीना नहीं हुआ, पीछे आऊँगा।"

इतनी बड़ी स्पर्द्धा पियादे को सहन नहीं हुई। उसने कड़े मिजाज़ से कहा, "बाबू का हुकुम है कि जूते मारते-मारते खींच ले जाऊँ।"

गफ़ूर दूसरी बार आत्मविस्मृत हो गया, वह भी एक दुर्वाक्य उच्चारण करता हुआ बोला, "महारानी के राज्य में कोई किसी का गुलाम नहीं है। लगान देकर रहता हूँ, मैं नहीं जाऊँगा।"

परंतु संसार में इतने छोटे को इतने बड़े की दुहाई देना केवल निष्फल ही नहीं, विपत्ति का कारण भी है। खैर यही हुई कि इतना क्षीण कण्ठ उतने बड़े कानों तक पहुँचा नहीं—अन्यथा उसके मुँह का अन्न और आँखों की नींद दोनों ही चली जातीं। उसके बाद क्या हुआ विस्तार से कहने की जरूरत नहीं, परंतु घण्टे भर बाद जब वह जमीं-

दार की बैठक से लौट कर घर में जाकर चुपचाप सो गया, उस समय उसकी आँखें और मुँह फूल रहे थे। उसे इतने बड़े दंड मिलने का कारण मुख्यतः महेश था। गफूर के घर से बाहर निकलने के बाद वह भी पगट्टा तोड़ कर बाहर निकल पड़ा एवं जमींदार के सहन में घुस कर फूल के पौधों को खा डाला; धान सूख रहे थे उन्हें फैलाकर नष्ट कर दिया; अन्त में पकड़ने का प्रयत्न करने पर बाबू की छोटी लड़की को पटक कर भाग गया। इस तरह की घटना यह पहली नहीं थी—इससे पहले भी घट चुकी थी, केवल गरीब जानकर ही उसे माफ कर दिया जाता था। पहले की भाँति इस बार भी वह आकर हाथ-पाँव जोड़ता तो शायद क्षमा कर दिया जाता, परंतु 'वह लगान देकर रहता है इसलिए किसी का गुलाम नहीं है', कहकर बोला था। प्रजा के मुँह से इतनी बड़ी स्पर्द्धा को जमींदार होने से शिवचरण बाबू किसी भी प्रकार सहन नहीं कर सके। वहाँ उसने प्रहार और *लाञ्छना का प्रतिवाद तक नहीं किया, सब मुँह बंद करके सह लिया।* घर आकर भी वह कुछ उसी भाँति चुपचाप पड़ा रहा। भूख-प्यास की बात उसे याद नहीं रही, परंतु छाती भीतर ही भीतर जैसे बाहर के मध्याह्नकालीन आकाश की भाँति जलने लगी। इसी तरह कितना समय बीत गया, उसे होश नहीं रहा, परंतु आँगन में से अचानक अपनी लड़की का आर्त्तकण्ठ कान में पड़ते ही वह जोर से उठ खड़ा हुआ और निकल कर बाहर आकर देखा, अमीना मिट्टी में पड़ी है एवं उसके विक्षिप्त टूटे घड़े से पानी निकल कर बह रहा है, और महेश मिट्टी में मुँह डाले उस पानी को मरुभूमि के समान सोखे जा रहा है। आँखों के पलक नहीं गिरे, गफूर का दिशा-विदिशा का ज्ञान जाता रहा। मरम्मत कराने के लिए उसने अपने हल के सिरे को खोल कर रख छोड़ा था, उसी को दोनों हाथों से पकड़ कर उसने महेश के झुके हुए मस्तक पर खूब जोर से आघात किया।

केवल एक बार महेश ने मुँह उठाने का प्रयत्न किया। उसके

बाद ही उसकी अनाहारक्लिष्ट क्षीण देह पृथ्वी पर लुढ़क गई ! आँखों के कोने से बहकर कुछ बूँद आँसू और कान से बह कर थोड़ा-सा खून निकलने लगा। दो बार उसका सम्पूर्ण शरीर थरथरा कर काँप उठा, तदुपरान्त आगे और पीछे के दोनों पाँव उसके जितनी दूर जा सकते थे फैला कर महेश ने अन्तिम श्वास छोड़ दी।

अमीना रोती हुई बोली, "क्या किया बापू, हमारा महेश तो मर गया।"

गफूर हिला नहीं, जवाब नहीं दिया। केवल निर्निमेष आँखों से एक जोड़ी अन्न निमेषहीन गहरी काली सी आँखों की ओर देखता हुआ पत्थर की भाँति निश्चल बना रहा।

दो घण्टे के भीतर समाचार पाकर दूसरे गाँव के मोचियों का झुण्ड आ जुटा। वे लोग बाँसों से बाँध कर महेश को बीहड़ की ओर ले चले। उन लोगों के हाथों में धारवाली चमचमाती हुई छुरियाँ देख कर गफूर ने सिहर कर आँखें मूँद लीं, परंतु कोई बात नहीं कही।

मुहल्ले के लोगों ने कहा, "तर्करत्न से व्यवस्था लेने के लिए जमींदार ने आदमियों को भेजा है, प्रायश्चित्त का खर्च जुटाने में इस बार तुझे दीवाल तक बेच देनी पड़ेगी।"

गफूर ने इन सब बातों का भी उत्तर नहीं दिया, दोनों घोंटुओं के ऊपर मुँह रक्खे हुए चुपचाप बैठा रहा।

बहुत रात बीते गफूर ने लड़की को उठा कर कहा, "अमीना, "चलो हम लोग चलें।"

वह बरामदे में सो रही थी, आँखें खोल कर उठकर बैठती हुई बोली, "कहाँ बापू ?"

गफूर ने कहा, "फुलवाड़ी की जूटमिल में काम करने।"

लड़की चकित होकर देखती रही। इससे पहले बहुत दुःख उठाते हुए भी उसके पिता मिल में काम करने को राजी नहीं हुए थे। वहाँ धर्म नहीं रहता, इज्जत-आबरू नहीं रहती, ये बातें उसने बहुत बार सुनी थीं।

गफूर ने कहा, "देर मत कर बेटी। चल, बहुत रास्ता चलना पड़ेगा।"

अमीना पानी पीने की घंटी और पिता के भात खाने की पीतल की थाली साथ ले रही थी। गफूर ने निषेध किया, "वह सब रहने दे, बेटी। उससे मेरे महेश का 'प्राचित्तिर' (प्रायश्चित्त) होगा।"

अँधेरी रात में वह लड़की का हाथ पकड़ कर बाहर निकल पड़ा। इस गाँव में उसके आत्मीय नहीं थे, किसी से कुछ नहीं कहना था। आँगन पार होकर सड़क के किनारे उसी बबूल के नीचे आकर वह ठिठक कर खड़ा हो गया और अचानक हू हू करके रो उठा। नक्षत्र जटित काले आकाश की ओर मुँह उठा कर बोला, "अल्लाह! मुझे जितनी चाहो सजा देना, परंतु मेरा महेश प्यास लिए मर गया है। उसके चरने के लिए थोड़ी-सी धरती भी किसी ने नहीं रक्खी। जिसने तुम्हारी दी हुई मैदान की घास, तुम्हारे दिए हुए प्यास के पानी को उसे नहीं खाने-पीने दिया, उसका कसूर तुम कभी भी माफ मत करना।"

हरिचरण

उस बात को आज बहुत दिन बीत गए। लग-भग दस-बारह वर्ष पहले की बात है। उस समय दुर्गादास बाबू वकील नहीं हुए थे। दुर्गादास शर्मा को शायद तुम भलीभाँति नहीं पहिचानते, परंतु मैं अच्छी तरह जानता हूँ। आओ, उनसे तुम्हारा परिचय करा दूँ।

एक मातृ-पितृ-विहीन अनाथ कायस्थ बालक न जाने कहाँ से आकर रामदास बाबू के घर रहने लगा था। सब लोग कहते—"लड़का बड़ा अच्छा है। सुन्दर और समझदार है। दुर्गादास बाबू के पिता का बड़ा प्यारा नौकर है।"

छोटे-बड़े सभी काम वह स्वयं करने को प्रस्तुत रहता। गाय को सानी देने से लेकर रामदास बाबू के पाँव दबाने तक के सभी कामों को वह स्वयं बड़े चाव से करता। हर समय किसी-न-किसी काम में लगे रहना ही उसे पसन्द था।

लड़के का नाम था हरिचरण। गृहस्वामिनी को उसका काम देख कर प्रायः आश्चर्य होता। अतः वे

कभी-कभी उसे डाँट भी देती थीं, कहतीं—"हरिया और भी नौकर हैं, वे कर लेंगे, तू अभी लड़का है, तू इतना परिश्रम क्यों करता है ?" हरि में एक अवगुण भी था, उसे हँसना बहुत अच्छा लगता था। हँसकर कहता—"माताजी, हम लोग ठहरे गरीब आदमी, सदैव मेहनत-मजदूरी ही तो करनी है, और करना भी क्या है ?"

इस प्रकार सुख-दुख, लाड़-प्यार और काम-काज में हरिचरण ने प्रायः एक वर्ष बिता दिया।

× × ×

सुरबाला रामदास बाबू की छोटी लड़की है। उसकी आयु होगी प्रायः पाँच-छै वर्ष की। सुरबाला हरिचरण से खूब हिल-मिल गई थी, दोनों में खूब बनती थी। जब दूध पिलाने के लिए माँ-बेटी में द्वन्द्वयुद्ध होता, और वे बहुत कुछ कह सुन कर भी जब उस छोटी-सी लड़की को दूध न पिला पातीं, जब दूध पीने की विशेष आवश्यकता और न पीने से लड़की की मृत्यु की आशङ्का से व्याकुल हो, क्रोध के कारण झल्लाकर लड़की के गाल मसल देतीं, फिर भी उसे दूध पीने के लिए राजी न कर पातीं, तब वैसी स्थिति में भी वह हरिचरण के कहने से दूध पी लेती थी।

बहुत-सी व्यर्थ बातें कह डालीं, जाने दो। अब मतलब की बात कहता हूँ, समझ लो कि सुरबाला हरिचरण को बहुत प्यार करती थी।

दुर्गादास बाबू की आयु जब बीस वर्ष की थी, तब की बात कह रहा हूँ। दुर्गादास तब कलकत्ते में ही पढ़ते थे। घर आने में बहुत परेशानी थी—पहले स्टीमर पर चढ़ो, फिर दस-बारह कोस पैदल चलो, बड़ी झंझट का रास्ता था। इसीलिए दुर्गादास घर बहुत कम आते थे।

लड़का बी० ए० पास करके घर आया है। माँ बहुत व्यस्त हो रही हैं। लड़के को भलीभाँति खिलाने-पिलाने, सेवा-प्यार करने में जैसे घर के सभी लोग एक साथ उत्कण्ठित हो उठे हैं।

दुर्गादास ने पूछा, "माँ, यह लड़का कौन है ?" माँ ने कहा, "यह एक कायस्थ का लड़का है, इसके माँ-बाप कोई नहीं हैं, इसी से तुम्हारे पिता ने इसे रख लिया है। नौकर का सब काम-काज करता है, बड़ा सीधा है; कोई कुछ भी कहे, गुस्सा नहीं होता। बेचारे के माँ-बाप कोई नहीं हैं, अभी बच्चा ही तो है, मुझे बहुत प्यारा लगता है।"

घर आकर दुर्गादास बाबू को हरिचरण का यह सबसे पहला परिचय मिला।

अस्तु, आजकल हरिचरण को बहुत काम करना पड़ता है, इससे वह प्रसन्न है, रुष्ट नहीं। छोटे बाबू को नहलाना, आवश्यकतानुसार पानी का लोटा रख देना, समय पर पान का डिब्बा हाजिर करना, मौके पर हुक्का भर लाना, इन सब कामों में हरिचरण बहुत होशियार था। दुर्गादास बाबू भी प्रायः सोचा करते, लड़का बहुत 'इण्टेलिजेण्ट' है। अतः धोती चुनना, तम्बाकू भरना आदि काम यदि हरिचरण न करता तो दुर्गादास बाबू को वे पसन्द ही नहीं आते थे।

× × ×

कुछ समझ में नहीं आता, कहाँ का पानी कहाँ जाकर मरता है। याद है, एक बार हम दोनों ने रोते-रोते एक बड़ा दुरूह तत्त्व पढ़ा था। मुझे ऐसा लगता है, सम्भवतः सभी बातों में वह तत्त्व लागू होता है। क्या दुनियाँ में 'कर भला, होगा भला' ही होता है ? 'कर भला, होगा बुरा' होता ही नहीं। यदि तुमने न देखा हो तो आओ, आज तुम्हें भी दिखा दूँ वह अत्यन्त दुरूह तत्त्व।

मैं नहीं कहता कि ऊपर लिखी बातें समझ में आ ही जानी चाहिए, और इसकी आवश्यकता भी नहीं है। और न मेरा यह उद्देश्य ही है कि तुम्हें 'फिलासफी' का उपदेश दूँ। तो भी, तुमसे दो बातें कह डालूँ, हर्ज भी क्या है ?

आज दुर्गादास बाबू को किसी गहरी दावत में जाना है। घर में खाना नहीं खाएँगे, सम्भवतः लौटने में अधिक रात हो जाएगी, अतः नित्य का काम समाप्त करके हरिचरण को सो जाने के लिए कह गए हैं।

अब हरिचरण की बात कहता हूँ। दुर्गादास बाबू रात को बाहर वाले कमरे में ही सोते थे। उसका कारण सब लोग नहीं जानते थे। मेरी समझ में स्त्री के मायके चले जाने के बाद से उन्हें बाहर सोना ही अधिक पसन्द था।

रात को छोटेबाबू के लिए बिस्तर बिछाना, सोने पर उनके पाँव दबाना आदि काम हरिचरण के ही जिम्मे थे। अन्त में जब वे भलीभाँति सो जाते, तब हरिचरण बगल की कोठरी में जाकर सो जाता था।

सन्ध्या होने से पहले ही हरिचरण के माथे में दर्द होने लगा। वह समझ गया कि अब ज्वर आने में अधिक देर नहीं है। बीच-बीच में प्रायः ही उसे ज्वर आ जाया करता था, अतः उसके पूर्व-लक्षणों से वह भलीभाँति परिचित हो चुका था। हरिचरण से बिल्कुल बैठा नहीं गया तो वह जाकर सो गया। इस बात का उसे होश तक नहीं रहा कि अभी छोटे बाबू का बिस्तर बिछाना बाकी है। रात को सबने खाया-पीया, परन्तु हरिचरण खाने को नहीं आया। उसकी 'माताजी' उसे देखने आईं। शरीर पर हाथ रख कर देखा, बहुत गरम था। समझ गईं कि ज्वर आ गया है, अतः उसे तंग न करके चली गईं।

रात के लगभग बारह-एक बजे होंगे। दावत खाकर छोटेबाबू घर आए, देखा तो बिस्तर तक नहीं बिछाए गए हैं। एक तो नींद आ रही थी, दूसरे रास्ते भर यह सोचते चले आ रहे थे कि घर चल कर आनन्द से सो जाएँगे—हरिया उनके थके हुए पांवों को जूतों से मुक्त कर उन्हें धीरे-धीरे दबाता जाएगा और उस सुख में कुछ तन्द्रा की झपकी लेते हुए वे हुक्के का नैंचा मुँह से लगाकर एक साथ देखेंगे कि सबेरा होगया है।

एकदम हताश होकर वे बहुत बिगड़े, अत्यन्त क्रुद्ध होकर दो-चार बार जोर-जोर से पुकारा—"हरी, हरिया, ए हरिया !" हरिया हो तो बोले ! बेचारा ज्वर में बेहोश पड़ा था। तब दुर्गादास बाबू ने सोचा—नालायक सो गया जान पड़ता है। कोठरी में जाकर देखा, सचमुच ओढ़े पड़ा था।

अब और सहन नहीं हुआ। बड़े जोर से बाल पकड़ कर उसे उठा कर बैठाने का प्रयत्न किया, परन्तु तो भी वह ज्यों-का-त्यों पड़ा रहा। अब तो छोटे बाबू विषम-क्रोध से हिताहित का ज्ञान भुला बैठे, हरिया की पीठ पर कसकर एक जूते की ठोकर जमा दी। उस कड़ी चोट से वह चैतन्य होकर उठ बैठा। दुर्गादास बाबू बोले—"छोटे बच्चों की भाँति सो गया है, बिस्तर क्या मैं बिछाऊँगा ?" यह कहते हुए उनका क्रोध और बढ़ गया, ऊपर से दो-तीन बेंत और मार दिए।

रात को, जब हरिचरण पद-सेवा कर रहा था, उस समय शायद गरम पानी की एक बूँद बाबू के पाँव पर गिरी थी।

× × ×

सारी रात दुर्गादास बाबू को नींद नहीं आई। पानी की वह एक बूँद उन्हें बहुत गरम मालूम हुई। हरिचरण को वे अत्यन्त प्यार

करते थे। अपनी नम्रता के कारण केवल उन्हीं का क्यों, वह सभी का प्रिय पात्र था। विशेषकर, इस महीने भर की घनिष्टता से वह और भी अधिक प्रिय बन गया था।

रात को उन्होंने कई बार सोचा कि एक बार जाकर उसे देख आवें; कहाँ लगी है, कितना सूज गया है। परन्तु वह नौकर ठहरा, क्या उनका जाना ठीक होगा ? कई बार सोचा कि चलकर पूछ तो लें कि ज्वर कुछ कम हुआ या नहीं ? परन्तु उसके पास जाने में उन्हें लज्जा अनुभव होने लगी। सबेरे ही हरिचरण ने बाबू को हाथ-मुँह धोने के लिए पानी ला दिया और हुक्का भर कर रख गया। दुर्गादास बाबू तब भी यदि पूछ लेते, सान्त्वना के दो-एक शब्द ही कह देते ! वह तो अभी लड़का है, अभी उसकी आयु ही क्या है, तेरह वर्ष भी पूरे नहीं हुए होंगे। लड़का समझ कर ही एक बार पास बुला कर देख लेते, बेंत कहाँ लगा है, खून कैसे जम गया है, जूते की ठोकर से कितना सूज गया है ! आखिर लड़का ही तो ठहरा, उसमें इतने लज्जित होने की कौन-सी बात थी !

प्रायः नौ बजे कहीं से एक तार आ पहुँचा। तार की बात सुनते ही दुर्गादास बाबू का तार-बेतार हो गया, कुछ घबरा-से गए। खोल कर पढ़ा, स्त्री सख्त बीमार है। अचानक उनका कलेजा बैठ गया। उसी दिन उन्हें कलकत्ते चले जाना पड़ा। गाड़ी पर सवार होते हो सोचने लगे, भगवान् ! कहीं प्रायश्चित्त तो नहीं होने जा रहा है !

लगभग एक मास बीत गया। दुर्गादास बाबू का चेहरा आज अत्यन्त प्रसन्न था, उनकी स्त्री का नया-जीवन हुआ समझो; मरते-मरते बची है। आज पथ्य लिया है।

घर से आज एक पत्र आया है। दुर्गादास बाबू के छोटे भाई ने लिखा है। उसके नीचे 'पुनश्च' लिख कर लिखा है, 'बड़े दुःख की

बात है, कल सबेरे दस दिन तक ज्वर में पड़े रहने के बाद हरि-चरण की मृत्यु हो गई। मृत्यु से पूर्व उसने आपको अनेक बार देखना चाहा था।'

आह ! बेचारे बिना माँ-बाप का अनाथ लड़का !

दुर्गादास बाबू ने पत्र को टुकड़े-टुकड़े करके फैंक दिया।

प्रकाश और छाया

१

प्रारम्भ में ही यदि तुम जीभ पकड़लो और कहो कि ऐसा कभी नहीं हो सकता, तब तो मैं लाचार हूँ। परन्तु यदि यह कहो कि हो भी सकता है—दुनियाँ में कितना क्या-क्या होता है, सब बातों को थोड़े ही जानता हूँ—तो इस कहानी को पढ़ डालो। मेरा विश्वास है कि इससे किसी भी प्रकार की कोई बड़ी हानि न होगी। और कहानी लिखने के लिए बैठते समय कुछ ऐसी प्रतिज्ञा तो की ही नहीं है कि जो कुछ लिखूँगा, सब पूर्णतः सत्य ही होगा। यदि एक-दो पंक्तियाँ झूँठ भी हो, थोड़ा बहुत मतभेद भी हो तो इससे ऐसा क्या बनता-बिगड़ता है।

हाँ, नायक का नाम है यज्ञदत्त मुखर्जी, परन्तु सुरमा उससे कहती है—प्रकाश। तो नायिका का नाम तो सुन ही लिया, परन्तु यज्ञदत्त उसे 'छाया' कह कर पुकारता है। कुछ दिन तो उनमें इस बात पर बहुत विवाद चलता रहा कि कौन प्रकाश है और कौन छाया, किसी भी प्रकार इसकी मीमांसा नहीं

हुई। अन्त में सुरमा ने ही समझा दिया, "तुम्हारी सूक्ष्म बुद्धि में इतनी सी बात भी नहीं आती कि तुम न हो तो मैं कहीं की भी नहीं, परन्तु मेरे बिना तुम चिरकाल तक चिरजीवी हो; अतः तुम प्रकाश हो और मैं हुई छाया।"

इस पर यज्ञदत्त हँस कर बोला—"इकतरफ़ा डिग्री चाहती हो तो ले लो, परन्तु फ़ैसला ठीक नहीं हुआ।"

"खूब हुआ है, बढ़िया हुआ है, बहुत अच्छा हुआ है। प्रकाश, अब झगड़ने की आवश्यकता नहीं। तुम प्रकाश हो और मैं हूँ श्रीमती छाया।" यह कहते हुए छाया ने प्रकाश को अनेक प्रकार से तंग कर डाला।

× × ×

कहानी का इतना तो होगया, परन्तु अब तुम्हीं लोगों से द्वन्द्व-युद्ध न हो जाय, यही भय है। तुम कहोगे, ये लोग स्त्री-पुरुष हैं; मैं कहूँगा—स्त्री-पुरुष तो अवश्य हैं, परन्तु पति-पत्नी नहीं हैं। अवश्य ही तुम आँखें चढ़ा लोगे—तो क्या अवैध प्रेम है? मैं कहूँगा—बहुत ही शुद्ध प्रेम है। तुम लोगों को किसी भी प्रकार विश्वास नहीं होगा; मुँह बना कर पूछोगे—आयु क्या है? मैं कहूँगा, प्रकाश की आयु है तेईस वर्ष की और छाया है अठारह की।

इसके पश्चात् भी यदि सुनना चाहो तो आरम्भ करता हूँ—

यज्ञदत्त के छोटी-सी छँटी हुई दाढ़ी, आँखों पर चश्मा, सिर पर लैवेण्डर की सुगन्धि, चुनी हुई ढाके की धोती, कमीज पर ऐसेन्स लगा हुआ, पाँवों में मखमल के स्लीपर जिन पर छाया ने अपने हाथ से फूल काढ़ दिए हैं—लाइब्रेरी में खूब भर रही पुस्तकें और हैं घर में अनेक दासियाँ। टेबुल के किनारे बैठा हुआ यज्ञदत्त पत्र लिख रहा है, सामने बहुत बड़ा दर्पण है। परदा हटा कर छाया ने अत्यन्त

सावधानी से प्रवेश किया। उसकी इच्छा थी, चुपचाप पीछे से जाकर आँखें बन्द करले, परन्तु, पीठ के पास आकर हाथ बढ़ाते ही सामने शीशे पर दृष्टि जा पड़ी। देखा, यज्ञदत्त उसके मुँह की ओर देख-देखकर मुस्कुरा रहा है। सुरमा भी हँस दी, बोली "क्यों, देख लिया ?"

यज्ञदत्त ने कहा—"यह क्या मेरा कुसूर है ?"

सुरमा ने पूछा—"तो फिर किसका है ?"

यज्ञदत्त बोला—"आधा तुम्हारा है और आधा दर्पण का।"

सुरमा बोली—'मै उसे अभी ढँके देती हूँ।"

यज्ञदत्त ने कहा—"ढँक दो न, परन्तु फिर के लिए क्या करोगी ?"

सुरमा ने दो-तीन बार हिल-डुल कर कहा—"प्रकाश !"

यज्ञदत्त बोला—"कहो छाया !"

सुरमा ने पूछा—"तुम थकते क्यों जाते हो ?"

यज्ञदत्त बोला—"मुझे तो ऐसा नहीं लगता।"

सुरमा बोली—"तुम खाते क्यों नहीं।"

यज्ञदत्त हँसने लगा। बोला—"सुनो, झगड़ा करने आई हो ?"

सुरमा बोली—"हूँ !"

यज्ञदत्त ने कहा—"मैं इसके लिए तय्यार नहीं हूँ।"

सुरमा ने पूछा—"तुम ब्याह क्यों नहीं करते ?"

यज्ञदत्त बोला—"इस बात का उत्तर तो प्रतिदिन एकबार दे ही दिया करता हूँ।"

सुरमा ने कहा—"नहीं, अब करना ही पड़ेगा।"

यज्ञदत्त ने पूछा—"सुरो, तुम अपना ब्याह क्यों नहीं करतीं ?"

सुरमा ने यज्ञदत्त के हाथ से चिट्ठी छीनते हुए कहा—"छिः विधवा का भी कहीं ब्याह होता है ?"

यज्ञदत्त ने कुछ देर चुप रह कर कहा—"कौन जाने ? कोई कहता है, होता है; कोई कहता है, नहीं होता।"

सुरमा बोली—"तो फिर मुझे इस निमित्त का भागी बनाने का प्रयत्न क्यों ?"

यज्ञदत्त ने लम्बी साँस लेकर कहा—"तो क्या सदैव मेरी सेवा करते-करते ही जीवन बिता दोगी ?"

"हूँ" कह कर वह टप्-टप् आँसू गिराती हुई रोने लगी।

यज्ञदत्त ने उसके आँसू पोंछते हुए कहा—"सुरो, तुम्हारे मन की साध क्या है, क्या मुझे साफ-साफ नहीं बताओगी ?"

सुरमा बोली—"मुझे वृन्दावन भेज दो।"

यज्ञदत्त ने पूछा—"मुझे छोड़ कर रह सकोगी ?"

सुरमा के मुँह से कोई बात नहीं निकली। दाएँ-बाएँ एक बार सिर हिलाने के साथ ही उसकी आँखों से झरनों की भाँति पानी बहने लगा।

२

सुरमा बोली—"यज्ञ भय्या ! वह कहानी फिर सुनाओ न ?"

यज्ञदत्त ने पूछा—"कौनसी कहानी ?"

सुरमा बोली—"वही जब मुझे वृन्दावन में खरीदा था, कितने पयों में खरीदा था ?"

यज्ञदत्त ने कहा—'पचास रुपए में। मेरी आयु तब अठारह वर्ष की थी। बी. ए. की परीक्षा देकर पश्चिम की ओर घूमने गया था। माँ तब जीवित थीं, वे भी साथ थीं। एक दिन मध्याह्न काल में मालती-कुञ्ज के पास से वैष्णवियों का एक दल भजन गाता हुआ जा

रहा था, उसी में मैंने पहिले पहल तुम्हें देखा। यौवन की पहली सीढ़ी पर पाँव रखते ही दुनियाँ ऐसी सुन्दर-सुहावनी दीखने लगती है कि केवल अपनी ही आँखों से उसका पूरा-पूरा माधुर्य नहीं लूटा जा सकता। इच्छा होती है, मन की सी और दो आँखें इसी प्रकार एक साथ ऐसी शोभा का उपभोग कर सकें, यदि उसे समझा दे सकूँ—पर, यह क्या सुरमा, तुम रो रही हो ?"

सुरमा बोली—"नहीं नहीं; तुम कहे चलो।"

यज्ञदत्त बोला—"तुम तब तेरह वर्ष की आयुवाली नवीन वैष्णवी थीं। तुम्हारे हाथ में तम्बूरा था और भजन गा रही थीं।"

सुरमा ने कहा—"जाओ, मैं क्या गीत गा सकती हूँ ?"

यज्ञदत्त बोला—"उस समय तो गा सकती थीं, उसके पश्चात् बड़े परिश्रम से तुम्हें पाया। तुम ब्राह्मण की लड़की थीं—बाल विधवा। तुम्हारी माँ तीर्थ में आकर फिर नहीं लौट सकीं, स्वर्ग सिधार गईं। मैंने तुम्हें लाकर अपनी माँ के हाथ में सौंप दिया। उन्होंने तुम्हें छाती से लगा लिया; तदुपरान्त, मरते समय वे फिर मुझे ही लौटा गईं।"

सुरमा ने पूछा—"यज्ञ भय्या, तुम्हारा घर कहाँ है ?"

यज्ञदत्त ने कहा—"सुना है, किशन नगर के पास है कहीं ?"

सुरमा ने कहा—"मेरे और कोई नहीं है ?"

यज्ञदत्त बोला—"मैं हूँ न, यही तो तुम्हारा सब कुछ है, सुरमा!"

सुरमा के पलक फिर भींग गए, बोली—"तुम मुझे फिर बेच सकते हो ?"

यज्ञदत्त ने कहा—"नहीं, ऐसा नहीं कर सकता। अपने को बेचे बिना यह काम हर्गिज नहीं हो सकता।"

सुरमा कुछ बोली नहीं, उसी प्रकार डबडबाई हुई आँखों से उसकी ओर देखती रही। बड़ी देर बाद धीरे से बोली, "तुम बड़े भय्या

हो। मैं छोटी बहिन हूँ, हम दोनों के बीच एक अच्छी-सी बहू ले आओ न, भय्या !"

यज्ञदत्त ने पूछा—"क्यों भला ?"

सुरमा बोली—"दिनभर उसका साज-सिंगार करके, उसे तुम्हारे पास लाकर बैठा दिया करूँगी।"

यज्ञदत्त ने कहा—"सो क्या तुम यह काम पूरे मन से कर सकोगी ?"

सुरमा ने मुँह उठाकर, उसकी आँखों में आँखें गढ़ाकर कहा—"मैं क्या ऐसी अधम हूँ जो जलूँगी ?"

यज्ञदत्त ने कहा—"जलोगी नहीं, परन्तु अपनी जगह तो लुटा दोगी ?"

सुरमा बोली—'लुटा क्यों दूँगी ? मैं राजा की राजा ही रहूँगी, केवल एक मन्त्री नियुक्त कर दूँगी, हम दोनों मिल कर तुम्हारा राज्य चलावेंगी, बड़ा आनन्द रहेगा।"

यज्ञदत्त ने कहा—"देखो छाया, विवाह करने की मेरी इच्छा नहीं, परन्तु हाँ, यदि तुम्हें एक साथी की बहुत आवश्यकता हो तो विवाह कर भी सकता हूँ।"

सुरमा बोली—"हाँ, अवश्य करो, बड़ा आनन्द रहेगा; हम दोनों खूब आनन्द से दिन बिताऐंगी।"

इतना कहकर सुरमा मन-ही-मन बोली—"मेरे तो तीनों कुलों में कोई है नहीं, मान-अभिमान हो, सो भी नहीं, परन्तु तुम क्यों मेरे कारण दुनियाँ भर का कलङ्क बटोरोगे ? तुम मेरे देवता हो। तुम विवाह करो, मैं तुम्हारा मुँह देखकर सब सह लूँगी।"

३

कलकत्ते में ऐसे बहुत से लोग हैं, जो अपने पड़ोसी की खबर

तक नहीं रखते, और बहुत से रखते हैं तो खूब रखते हैं। जो खबर रखते हैं, वे कहते हैं—यज्ञदत्त बी. ए. पास भले ही कर ले, परन्तु है आवारा लड़का। संकेत में वे सुरमा का उल्लेख करते हैं। कभी-कभी यह बात सुरमा और यज्ञदत्त के कानों में भी पड़ जाती है। सुनकर वे दोनों हँसने लगते हैं।

परन्तु तुम चाहे अच्छे हो, चाहे बुरे; यदि बड़े आदमी हो तो तुम्हारे घर लोग आएँगे ही, विशेषकर स्त्रियाँ। कोई कहती, "सुरमा, तुम अपने भय्या का व्याह क्यों नहीं करवा देतीं ?"

सुरमा उत्तर देती, "करा दो न दीदी, अच्छी-सी लड़की देखभाल कर।"

जो सुरमा की सहेली होती, वह हँस देती; "यही तो, अच्छी लड़की मिलना बहुत कठिन है, तुम्हारे रूप से जिसकी आँखें भरी हुई हैं, उसके..."

"हट जलमुँहीं"—कहते-कहते सुरमा का सम्पूर्ण चेहरा स्नेह एवं गर्व से लाल हो उठता।

उस दिन दोपहर के समय रिमझिम वर्षा हो रही थी, सुरमा ने कमरे में घुसते ही कहा—"एक लड़की पसन्द कर आई हूँ।"

यज्ञदत्त ने कहा—"ओह, सिर से एक चिन्ता हट गई। कहाँ, सुनूँ तो सही ?"

सुरमा बोली—"उस मुहल्ले के मित्रों* के यहाँ।"

यज्ञदत्त ने कहा—"ब्राह्मण होकर कायस्थ के घर ?"

सुरमा बोली—"क्यों, कायस्थों के घर क्या ब्राह्मण नहीं रहते ? उसकी माँ वहाँ रसोई बनाने का काम किया करती थी। सुना है, लड़की बहुत अच्छी है। देख आओ, यदि मन में बैठ जाय तो घर ले आना।"

---

* मित्र - बंगालियों में कायस्थों के एक मित्र का नाम।

यज्ञदत्त ने कहा—"मैं क्या ऐसा अभागा हूँ कि दुनियाँभर की भिखारिन के सिवा मेरी गुजर ही नहीं होगी ?"

सुरमा बोली—"भिखारिनें बटोर लाना तुम्हारे लिए कोई नया काम थोड़े ही है।"

यज्ञदत्त बोला—"फिर !"

सुरमा ने कहा—"नहीं, तुम जाओ, देख आओ। मन में जम जाय तो 'ना' मत करना।"

यज्ञदत्त ने कहा—"मन में तो किसी तरह जम ही नहीं सकती।"

सुरमा ने आग्रहपूर्वक कहा—"जम जायगी जी, खूब जमेगी, एक बार देख तो आओ।"

फिर छाया ने प्रकाश को ऐसा सजा दिया, सुगन्धि आदि लगा कर, माँज-घिसकर, बाल काढ़ कर, इस ढंग से दर्पण के सामने खड़ा कर दिया कि यज्ञदत्त को लज्जा अनुभव होने लगी। बोला—"छिः, यह तो बहुत ज्यादती होगई।"

सुरमा ने कहा—"हो जाने दो, तुम देख आओ।"

यज्ञदत्त गाड़ी पर सवार होकर लड़की देखने चल दिया। मार्ग में एक मित्र को भी अपने साथ कर लिया, "चलो मित्रों के यहाँ जल-पान कर आवें।"

मित्र ने पूछा—"इसका मतलब ?"

यज्ञदत्त ने बताया—"उनके घर एक भिखारिन की लड़की है, उसके साथ विवाह करना होगा।"

मित्र बोला—"कहते क्या हो ? यह सीख किसने दी !"

यज्ञदत्त ने कहा—"तुम लोग जिसकी ईर्ष्या से मरे जा रहे हो, उसी छाया ने।"

यज्ञदत्त अपने मित्र के साथ लड़की देखने के लिए मित्रों के घर पहुँचा। लड़की कारपेट के आसन पर बैठी थी, कई बार की धुली देसी साड़ी पहिरे, उसके सूत कहीं-कहीं ऐसे बिखर गए थे, जैसे जाली हो। हाथों में बिल्लौरी चूड़ियाँ थीं और ताँबे जैसे रङ्ग के सोने के इँठे हुए कड़े, कहीं-कहीं उनके भीतर का चपड़ा दीख रहा था। माथे में इतना तेल पड़ा था कि ललाट तक चमचमा रहा था और सिर के ठीक बीचोंबीच ब्रह्मतालु के ऊपर काठ-सा कड़ा बँधा हुआ जूड़ा ऊँचा खड़ा था। दोनों मित्र उसे देखते ही मुस्कुरा दिए। यज्ञदत्त ने हँसी छिपाकर लड़की की ओर देखते हुए कहा—"क्या नाम है तुम्हारा ?"

लड़की ने अपनी बड़ी-बड़ी काली आँखों को शान्त भाव से उसके मुँह पर गढ़ाते हुए कहा—"प्रतुल।"

यज्ञदत्त ने अपने मित्र को चिकोटी भरकर मुस्कुराते हुए कहा, "क्यों भाई, गदाधर* तो नहीं ?"

मित्र ने एक हल्का-सा धक्का देते हुए कहा—"अधिक मत बको, झटपट पसन्द कर डालो।"

"हाँ, हाँ, अभी लो।"

"अच्छा-अच्छा क्या पढ़ती हो ?"

"कुछ नहीं।"

"यह और भी अच्छा है। काम-काज करना आता है ?"

प्रतुल ने सिर हिलाया। समीप ही एक नौकरानी खड़ी थी, उसने व्याख्या करदी, "बड़ी कमेरी लड़की है बाबूजी, रसोई बनाने-

---

* गदाधर—स्व० गिरीशचन्द्र के नाटक का एक पात्र, जिसने तलाशी के समय पुलिस के भय से स्त्री की पोशाक पहिन कर स्वयं को छिपाने की चेष्टा की थी।

परोसने एवं घर के काम धन्धों में बिल्कुल अपनी माँ जैसी। और मुँह से तो इसके बात भी नहीं निकलती—बड़ी शान्त है।"

"सो तो देख ही रहा हूँ," फिर लड़की से पूछा—"तुम्हारे पिता हैं?"

"नहीं!"

"माँ भी मर गई हैं?"

"हाँ!"

यज्ञदत्त ने देखा कि उस गूँगी-बेवकूफ लड़की की आँखों में आँस भर आए हैं, पूछा—"क्या तुम्हारे कोई भी नहीं है?"

"नहीं।"

"हमारे घर चलोगी?"

उसने गर्दन हिलाई, "हाँ।" इतने ही में उसकी खिड़की की ओर दृष्टि पड़ी तो देखा कि उसमें से दो काली आँखें जैसे आग बरसा रही हों। तब उसने भयभीत होकर कह दिया, "नहीं।"

बाहर आकर मित्र महोदय से भेंट हुई।

उन्होंने पूछा—"लड़की कैसी लगी?"

"अच्छी है।"

"तो फिर विवाह का मुहूर्त्त सुधवाया जाय?"

"हाँ, हाँ!"

४

बारह-तेरह वर्ष की आयु के लड़के के हाथ से, जब कोई निर्दय अरसिक अभिभावक उसका अधपढ़ा कौतुकपूर्ण उपन्यास छीनकर छिपा देता है तो उसकी जैसी हालत होती है, उसके भीतर का प्राण व्याकुल भाव से उन शुष्क-मुख शङ्कित बालक को कभी इस कोठरी

में और कभी उस कोठरी में दौड़ाता फिरता है, उसकी डरी हुई तीव्र आँखें जिस प्रकार अपने उन प्रिय पदार्थ को ढूँढ़ने में व्यस्त एवं परेशान हो जाती थीं, तथा उसकी सर्वदा यही इच्छा होती रही है कि वह किसी पर खूब रुष्ट हो - उसी प्रकार सुरमा भी यज्ञदत्त के लिए छटपटाने लगी। वह क्या जाने क्या ढूँढ़ निकालेगी ? कुर्सी-बेंच, शोफा, पलङ्ग, कमरा, बरामदा, सभी वस्तुओं पर वह रुष्ट हो उठी। सड़क की ओर की एक भी खिड़की उसे पसन्द नहीं आई, कभी इस पर और कभी उस पर जाकर बैठने लगी। तभी यज्ञदत्त ने कमरे में प्रवेश किया।

सुरमा ने पूछा—"क्या हुआ प्रकाश महोदय ?"

प्रकाश का चेहरा गम्भीर हो गया।

सुरमा बोली—"पसन्द आई ?"

यज्ञदत्त ने कहा—"आई।"

सुरमा ने पूछा—"कब का विवाह है ?"

यज्ञदत्त ने कहा—"शायद इसी महीने में।"

निरानन्द उत्साह के साथ सुरमा पास आए उसने किसी प्रकार का ऊधम भी नहीं किया, बोली—"तुम्हें मेरे सिर की सौगन्ध है, सच बताओ ?"

"यह कैसी आफत है, सच ही तो कह रहा हूँ।"

"मेरा मरा मुँह देखो, बताओ, पसन्द आ गई ?"

"हाँ !"

अचानक सुरमा को जैसे कोई शब्द ढूँढ़े न मिला। जिस प्रकार बच्चे डाँट खाकर रोने से पूर्व इधर-उधर गर्दन हिलाकर कोई अर्थहीन बात कह डालते हैं, सुरमा ने भी वैसे ही बच्चों की भाँति

गर्दन हिलाते हुए गम्भीर स्वर में कहा—"मैंने तो पहले ही कह दिया था।"

यज्ञदत्त अपनी ही चिन्ता में व्यस्त था, अतः समझ ही नहीं सका कि उसका कुछ अर्थ नहीं होता, क्योंकि पहले तो 'पसन्द ही होगी' ऐसी बात सुरमा ने कभी कही नहीं, दूसरे उसने स्वयं लड़की देखी नहीं अपितु, ऐसी आशा तो उसने बिल्कुल ही नहीं की थी कि वह इतनी जल्दी पसन्द आएगी और सगाई भी पक्की हो जाएगी। इसी से वह दिनभर अपने कमरे में बैठकर इसी बात को सोचने लगी। दो दिन पश्चात् यज्ञदत्त की समझ में बहुत-कुछ आ गया। बोला—"सुरो, यह विवाह मत कराओ बहिन!

सुरमा बोली—"वाह, ऐसा भी कहीं हो सकता है? सगाई जो पक्की हो गई है?

यज्ञदत्त ने कहा—"पक्की-बक्की कुछ नहीं हुई है।"

सुरमा बोली—"नहीं, यह नहीं हो सकता, दुखिया लड़की को सुखी करना है, यह भी तो सोचो, और विशेष कर वचन देकर मुकर जाओगे?"

यज्ञदत्त को प्रतुल का चेहरा याद आ गया, उस दिन उसकी काली-काली आँखों में मानो उसने सहिष्णुता एवं शान्तभाव की निगूढ़ छाया देखी थी, इसी से वह चुप हो रहा। फिर भी, बहुत-सी बातें सोचने लगा। सुरमा के सम्बन्ध में ही अधिक सोचा। वर्षा के दिन जिस प्रकार बरसाती पतंगे अचानक ही घर-घर में भर जाते हैं, उसी प्रकार उसका सम्पूर्ण मन बेचैनी से भर गया, और साथ ही, जिस प्रकार उन (पतंगों) का छिपा हुआ बाँस गह्वर ढूँढ़ने से नहीं मिलता, उसी प्रकार सुरमा के मुँह की बातें हृदय की किस गुप्त आशंका के भीतर से झुण्ड-बाँधकर निकलने लगीं, इसका कुछ भी पता नहीं चला। उसकी आँखों पर वैसा धुँधला जाला-सा

पड़ गया कि उसे किसी प्रकार भी सुरमा का चेहरा दिखाई नहीं दिया।

५

विवाह करके यज्ञदत्त बहू को घर ले गया, विकार-ग्रस्त रोगी के घर में कोई आदमी न रहने से जिस प्रकार वह अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को एकत्र कर पानी के घड़े की ओर दौड़कर उससे चिपट जाता है, ठीक उसी प्रकार सुरमा ने नई बहू को छाती से चिपटा लिया। अपने जितने भी आभूषण थे, सब उसे पहिना दिए, और जितने कपड़े थे, सब उसके बक्स में भर दिए। सूखे मुँह से दिनभर बहू को सजाने की धूम देखकर यज्ञदत्त का मुँह जरा-सा निकल आया। गम्भीर स्वप्न तो सहा जा सकता है, क्योंकि असह्य होते ही निद्रा भङ्ग हो जाती है, परन्तु, जाग्रत अवस्था में स्वप्न देखने पर दम अटकने लगता है, किसी प्रकार वह समाप्त नहीं होता, और नींद भी नहीं टूटती। कभी लगता है, यह स्वप्न है, कभी लगता है, यह सत्य है। प्रकाश और छाया है। प्रकाश और छाया दोनों को ही ऐसा अनुभव होने लगा। एक दिन अपने यज्ञदत्त ने कमरे में बुलाकर कहा—"छाया।"

"क्या है यज्ञ भय्या ?"

"प्रकाश नहीं कहा ?"

सिर झुकाकर सुरमा बोली—"प्रकाश !"

यज्ञदत्त ने अपने दोनों हाथ बढ़ाते हुए कहा—"बहुत दिनों से पास नहीं आई, आओ।"

सुरमा ने एक बार उसके मुँह की ओर देखा, और दूसरे ही क्षण कह उठी, "वाह मैं भी खूब हूँ। बहू को अकेली ही छोड़ आई हूँ।" कहती हुई जल्दी से भाग गई।

क्रोध में यदि किसी अपरिचित भले आदमी के गाल में थप्पड़ मार दिया जाय, और यदि वह शान्तभाव से क्षमा करके चला जाय, तो उस समय मन जैसा खराब हो जाता है, उसी प्रकार उसका मन भी क्षमा प्राप्त अपराधी की भाँति क्रमशः उत्साहहीन होने लगा। बार-बार ऐसा प्रतीत होने लगा—उसने अपराध किया है और सुरमा उसे जी-जान से क्षमा कर रही है।

सुरमा समस्त आभूषणों से भूषित नववधू को उसके पास जबर्दस्ती बैठा देती। सन्ध्या होते ही झटपट बाहर से ताला बन्द कर देती। यज्ञदत्त गाल पर हाथ रख कर सोचता रहता। बहू भी कुछ-कुछ समझ जाती है, वह सयानी लड़की नहीं है, फिर भी, है तो नारी ही, और साधारण स्त्री-बुद्धि से भगवान् किसी को वञ्चित नहीं रखते। वह भी रात भर जागती रहती।

विवाह हुए आज आठ दिन भी नहीं हुए, इतने ही में एकदिन सबेरे यज्ञदत्त ने सुरमा को बुलाकर कहा—"सुरो, वर्द्धमान (बर्दवान) में बुआ हैं, उन्हें बहू दिखा आऊँ।"

× × ×

दामोदर नदी के उस पार बुआ का गाँव है। बुआ के घर पहुँचते ही यज्ञदत्त ने कहा, "बुआ, बहू लाया हूँ; देखो।"

बुआ बोलीं—"अरे, विवाह कर लिया। ओ हो, जियो, जियो, हजारी उमर हो। बड़ी अच्छी चन्दा-सी बहू है। अब आदमी की तरह घर-गृहस्थी चलाओ बेटा!"

यज्ञदत्त ने कहा—"इसीलिए तो सुरमा ने यह विवाह करवाया है।"

बुआ बोली—"अच्छा सुरो ने यह विवाह कराया है?"

यज्ञदत्त बोला—"हाँ, उसी ने तो कराया है, परंतु भाग्य खराब निकला। इस बहू के साथ घर नहीं चल सकता।"

बुआ ने पूछा, "क्यों, सो क्यों ?"

यज्ञदत्त ने कहा, "जानती हो बुआ, मेरा मनुष्यगण है और बहू का है राक्षसगण। ज्योतिषी ने कहा है, एक साथ रहने से, जिया न जिया।"

बुआ बीच में ही बोलीं, "अरे बेटा, ऐसी बात..."

यज्ञदत्त ने कहा, "तब जल्दी में ये सब बातें नहीं देखी गईं, अब यह तुम्हारे पास ही रहा करेगी, हर महीने पचास रुपया तुम्हें भेज दिया करूँगा, इतने से काम नहीं चलेगा बुआ ?"

बुआ बोलीं, "हाँ, सो तो चल जाएगा। देहात में कोई विशेष तकलीफ भी नहीं होगी। अहा, चाँद-सी बहू है, बड़ी हो गई है, क्योंरे जग्गू, कोई शान्ति-विधान कराने से काम नहीं चलेगा ?"

यज्ञदत्त ने कहा, "चल सकता है। मैं भट्टाचार्यजी से पूछ कर, जैसा होगा, तुम्हें समाचार भेज दूँगा।"

बुआ ने कहा, "अच्छा, भेज देना बेटा।"

सन्ध्या के समय यज्ञदत्त ने बहू को पास बुलाकर कहा, "तो तुम यहीं रहो।"

उसने गरदन हिलाकर उत्तर दिया, "अच्छा।"

"तुम्हें जब किसी वस्तु की आवश्यकता हो मुझे समाचार देना।"

"अच्छा।"

'तुम्हें पत्र लिखना आता है ?"

"नहीं।"

"तो फिर समाचार कैसे दोगी ?"

नववधू घर की पालतू हिरणी की भाँति पति के चेहरे पर अपनी आँखें गड़ाए हुए चुपचाप खड़ी रही। यज्ञदत्त मुँह फेर कर चला गया।

बुआजी के घर में बहू खूब सबेरे ही उठ कर घर के काम-काज में लग जाती है। बैठे रहना उसने सीखा ही नहीं। बिल्कुल नई होने पर भी उसने परिचित की भाँति घर का काम-काज आरंभ कर दिया। दो-चार दिन में ही बुआ समझ गई कि ऐसी लड़की सभी की कोख से जन्म नहीं लेती।

बहू के पास बहुत गहने हैं। सारा मुहल्ला देखने को आता है। किसी ने पूछा, "किसने दिया है बहू ? तुम्हारे पिता ने ?"

"मेरे माता-पिता नहीं हैं, ननदजी ने दिया है।"

दो-एक समवयस्का मेल हो जाने पर खोद-खोद कर भेद जानने का प्रयत्न करने लगीं। पूछने लगीं, "तुम्हारी ननद शायद खूब बड़ी आदमिन हैं ?"

"हाँ !"

"सब गहने उन्हीं के हैं ?"

"सब !"

"वे नहीं पहिनतीं ?"

"वे विधवा हैं, नहीं पहिनती।"

"कितनी उम्र है बहू ?"

"हमलोगों से कुछ बड़ी होंगी। उन्होंने जबर्दस्ती अपने भय्या के साथ मेरा विवाह कराया है।"

"तुम्हारे पति उनका बहुत कहना मानते हैं, क्यों ?"

"हाँ, वे सती-लक्ष्मी हैं। सभी लोग उनसे प्रेम करते हैं।"

६

ऊपर की खिड़की से सुरमा ने देखा, यज्ञदत्त घर लौट आया, पर साथ में बहू नहीं है। घर में घुसते ही उसने पूछा—"भय्या, बहू को कहाँ छोड़ आए ?"

"बुआ के घर।"

"साथ क्यों नहीं लाए ?"

"अभी रहने दो, कुछ दिनों बाद देखा जाएगा।"

बात सुरमा की छाती में चुभ गई। दोनों चुप बने रहे। प्रियजनों में बहस करते समय अचानक झगड़ा हो जाने से जिस प्रकार वे कुछ देर तक खिन्न मन से चुपचाप बैठे रहते हैं, ये दोनों भी कुछ दिन उसी प्रकार बिताते रहे। सुरमा कहती, "नहा-धोकर खा-पी लो, बहुत देर हो गई है।" यज्ञदत्त कहता—"हाँ, जाता हूँ।"

इसी प्रकार कुछ दिन बीत गए।

एक साथ रह कर घर-गृहस्थी चलाने का काम सदैव इसी प्रकार नहीं हो सकता, इसी से फिर मेल होने लगा। यज्ञदत्त फिर लाड़-प्यार के साथ बुलाने लगा, "ओ छाया ! परन्तु छाया अब प्रकाश नहीं कहती। कभी यज्ञ भय्या कहती है, कभी केवल भय्या कह कर ही पुकारती है।"

एक दिन सुरमा ने कहा—"भय्या, लगभग तीन महीने होने आए, अब बहू को ले आओ।"

यज्ञदत्त ने बात टाल दी, "हाँ, सो आ जाएगी। सुरमा उसके मन का भाव समझ कर चुप रह गई।"

बुआ की चिट्ठी कभी-कभी आ जाया करती है। बुआ ने लिखा है, "बहू को मलेरिया-बुखार आने लगा है, इलाज होना आवश्यक है।"

आशय समझ कर यज्ञदत्त कुछ रुपए और अधिक भेज देता। फिर, महीने भर तक कोई बात ही नहीं छिड़ती।"

"इतने ही में एक दिन अचानक पत्र आया, बुआ मर गई हैं।"

यज्ञदत्त बर्दवान चला गया। जाते समय सुरमा ने सिर की शपथ देकर कह दिया - "बहू को लेते आना।"

"बर्दवान में, बुआ की तेरहवीं हो जाने के बाद, एक दिन दोपहर के समय यज्ञदत्त बरामदे में खड़ा-खड़ा घर लौटने की बात सोच रहा था। आँगन में धान के भिसौरे के समीप नई बहू खड़ी थी, उस पर उसकी दृष्टि पड़ गई। आँखें चार होते ही उसने हाथ के इशारे से उसे अपने समीप बुलाया।"

बहू समीप आ गई।

यज्ञदत्त ने पूछा—"क्यों ?"

"आपसे कुछ कहूँगी।"

"अच्छी बात है, कहो।"

नई बहू ने घूँटसा भरते हुए कहा—"एक दिन आपने कहा था, यदि मुझे कोई आवश्यकता हो तो...।"

यज्ञदत्त बोला—"हाँ-हाँ, क्या आवश्यकता है, बताओ...।"

बहू बोली—"घर में सभी कहा-सुनी करते हैं, मैं बड़ी कुलच्छिनी हूँ, अतः अब यहाँ रहने को जी नहीं करता।"

यज्ञदत्त बोला—"कहाँ रहना चाहती हो ?"

बहू ने कहा—"कलकत्ते में यदि कहीं भले घर में स्थान मिल जाता, मैं तो सभी काम करना जानती हूँ।"

यज्ञदत्त ने पूछा—"तुम अपने घर जाओगी ?"

बहू ने कहा—"मेरा अपना घर ? कहाँ है वह ? वे क्या अब रहने देंगे ?"

यज्ञदत्त ने अपने हाथ से स्त्री का मुँह ऊपर करते हुए कहा—"मेरे घर चलोगी ?"

बहू बोली—"चलूँगी।"

यज्ञदत्त बोला—"सुरमा तुम्हारे लिए बहुत घबरा रही है।"

सुरमा की चर्चा से उसका चेहरा खुशी के मारे फूल उठा, बोली—"दीदी मेरी याद करती हैं ?"

यज्ञदत्त ने कहा—"खूब करती हैं।"

बहू बोली—"तो ले चलिए।"

दुनियाँ में इस तरह के आदमी भी हैं, जिन्हें दूसरों के सम्बन्ध में अपनी राय प्रकट करने की बुद्धि किसी भी प्रकार ढूँढ़े भी नहीं मिल पाती, परन्तु, साथ ही उनमें एक ऐसी सहज बुद्धि भी होती है कि वे उस पर निर्भर होकर अपने सम्बन्ध में और किसी से सम्मति लेने की कोई आवश्यकता नहीं समझते। नई बहू इसी कोटि की है। वह अपनी बात स्वयं ही सोचती है, दूसरे से नहीं पूछती। उसने सोचकर कहा—"आप लोगों का अमङ्गल होने का बड़ा भय है मुझे, पर रहूँ भी तो कहाँ रहूँ ? अच्छा, मैं नीचे ही रहा करूँगी, सब काम-काज करने में नीचे आराम भी रहेगा।"

यज्ञदत्त ने कहा, "ऊपर क्या तुम्हारे रहने का कमरा नहीं है ?"

"है, परन्तु नीचे के कमरे में ही अच्छी रहूँगी।"

यज्ञदत्त ने फिर कोई बात नहीं की। वह सोचने लगा, इसकी बातें तो बिल्कुल मूर्खों जैसी नहीं हैं, और कई बार मन में आया कि कह दे, वह कुलच्छिनी नहीं है, राक्षसगण आदि सब मिथ्या बातें हैं। परन्तु झूँठ बोलने का क्या कारण था, सो कैसे बताया जाय ? विशेषकर वह इस बात का भी भरोसा नहीं कर सका कि वह घर जाकर अपने पिछले और आगे के व्यवहार में भलीभाँति सामञ्जस्य भी रख सकेगी।

७

सुरमा ने देखा, बहू आ गई है। तेज़ नशे का पहिला झौंका सँभाल कर अब वह स्थिर हो गई है। इसी से बहू को देखने के लिए उसने ज्यादती नहीं की। शान्त, धीर भाव से प्रिय-सम्भाषण किया, मौखिक ही नहीं—अन्तरङ्ग की मंगलेच्छा उसके शुष्क चेहरे पर फिर से ज्योति लौटा लाई। बोली—"बहू, वहाँ तबियत तो तुम्हारी ठीक ही नहीं रही ?"

बहू ने सिर हिलाते हुए कहा—"बीच-बीच में कभी बुखार आ जाता था।"

सुरमा ने उसके मस्तक का पसीना पोंछते हुए कहा—"यहाँ चिकित्सा होते ही सब ठीक हो जाएगा।"

दोपहर को सुरमा को पता लगा कि बहू के लिए नीचे का कमरा साफ हो रहा है, अपमान के मारे उसकी आँखों में आँसू भर आए। किसी प्रकार उन्हें रोकते हुए वह यज्ञदत्त के पास जाकर कहने लगी—"भय्या, बहू क्या नीचे सोएगी ?"

यज्ञदत्त ने पुस्तक पर से आँख उठाए बिना ही कहा—"वह तो यही कहती है।"

"तुम कुछ नहीं कहोगे ?"

"मैं क्या कहूँ ? जिसके जो मन में आवे करे।"

सुरमा लज्जा और धिक्कार से अपने को संयत न रख सकी, उसके सामने ही रो पड़ी और भाग खड़ी हुई।

ऊपर की यह घटना नीचे तक न पहुँच सकी।

नई बहू नए प्रकार से घर के काम-काज में जुट गई। क्रमशः धीरे-धीरे उसने सुरमा का सब काम अपने हाथ में ले लिया। केवल

ऊपर ही नहीं जाती, पति के साथ साक्षात्कार नहीं करती। धीरे-धीरे सुरमा ने भी ऊपर का आना-जाना छोड़ दिया। बहू प्रफुल्ल-गम्भीर मुख से काम में लगी रहती, सुरमा पास ही बैठी रहती। एक तो यह देखती कि काम करने में कितना सुख है और दूसरे यह समझती कि काम की बहती धारा में कितना दुःख बहाया जा सकता है। दोनों में से कोई भी अधिक बातचीत नहीं करती, उनमें पारस्परिक सहानुभूति क्रमशः गाढ़ी होती चली गई।

बीच-बीच में नई बहू को प्रायः बुखार आ जाया करता और दो-चार दिन उपवास करने से अपने आप चला जाता। औषधि खाने की ओर न तो उसकी प्रवृत्ति है और न वह खाती ही है। उस अवधि का काम-धन्धा नौकर-नौकरानियाँ ही करते हैं, सुरमा से होता नहीं, इच्छा होने पर भी अब यह उसके सामर्थ्य के बाहर की बात हो गई है।

सोने की प्रतिमा सुरमादेवी का न तो अब वह रंग है और न वह कान्ति ही। इतना लावण्य दो महीने में ही न जाने कहाँ उड़ गया। बहू कभी-कभी कहती—"दीदी, तुम दिन-प्रति-दिन ऐसी क्यों होती जा रही हो ?"

"मैं ? अच्छा भाभी, स्वास्थ्य सुधारने के लिए यदि मैं कहीं बाहर चली जाऊँ तो तुम्हें कष्ट तो न होगा ?"

"अवश्य, होगा क्यों नहीं ?"

"तो नहीं जाऊँगी !"

"नहीं दीदी, मत जाना, तुम दवा-दारू करके यहीं अच्छी हो जाओ।"

सुरमा ने स्नेह के आवेश में उसका मस्तक चूम लिया।

एक दिन सुरमा यज्ञदत्त के लिए थाली लगा रही थी। यज्ञदत्त उसके मलिन, सूखे चेहरे को सतृष्ण दृष्टि से देख रहा था। सुरमा

द्वारा आँख उठा कर सतृष्ण दृष्टि से देखते ही उसने दीर्घ निःश्वास लेते हुए कहा—"मन में आता है, मर जाऊँ तो अच्छा हो।"

"क्यों ?" कहते ही सुरमा की आँखों में आँसू भर आए।

"डरता हूँ, न जाने और कब तक इन प्राणों का भार ढोना पड़ेगा !"

जिस प्रकार बन्दूक की गोली खाकर वन्य-पशु पृथ्वी को छोड़-कर आकाश की ओर भागने के लिए जी-जान से उछल पड़ता है, परन्तु, आकाश में उसका कोई नहीं, अतः वह आश्र-शून्य मरणाहत जीव अन्त में चिर-आश्रय पृथ्वी को ही हृदय से लगा कर प्राण त्याग देता है, उसी प्रकार छटपटाती हुई सुरमा ने पहिले तो आकाश की ओर देखा, तदुपरान्त ठीक उसी प्रकार पृथ्वी पर लोटती हुई वह रोने लगी—"यज्ञ भय्या, क्षमा करो, मैं तुम्हारी शत्रु हूँ, मुझे कहीं अन्यत्र भेज दो, तुम सुखी होओ।"

कहीं नौकरानी न आ जाय, इस भय से यज्ञदत्त ने उसे हाथ पकड़ कर उठा लिया। फिर स्नेहपूर्वक उसके आँसुओं को पोंछते हुए कहा—"छिः इस प्रकार लड़कपन नहीं किया करते।"

सुरमा आँसू पोंछती हुई झटपट कमरे में चली गई और उसने भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया।

८

उसके पश्चात्, एक दिन सुरमा ने बहू को अपने पास खींचकर धीरे से पूछा—"बहू, भैया ने क्या तुम से कभी कुछ कहा है ?"

बहू ने सहज भाव से उत्तर दिया—"कहेंगे क्या ?"

"तो फिर तुम उनके पास जाती क्यों नहीं ? तुम्हारी क्या जाने की इच्छा नहीं होती ?"

बहू को पहिले तो लज्जा अनुभव होने लगी, फिर सिर झुका कर बोली—"होती तो है जीजी, परन्तु जाना तो नहीं हो सकता न !"

"क्यों बहू ?"

"आपको याद नहीं ?"

"नहीं तो !"

"अरे शायद आप भूल गईं हैं दीदी, मेरा जो राक्षसगुण है और उनका मनुष्यगुण है।"

"किसने कहा ?"

"उन्हींने बुआजी से कहा था, इसी से तो..."

सुरमा के एकाएक रोंगटे खड़े हो गए, बोली—"यह तो झूँठी बात है बहू ।"

"झूँठी बात है ?"

आँखें फाड़कर वह सुरमा के मुँह की ओर देखती रह गई । सुरमा के बार-बार रोंगटे खड़े होने लगे । बोली—"झूँठी बात है बहू, बिलकुल झूँठी !"

"मुझे विश्वास नहीं होता, वे झूँठ बोलेंगे ?"

सुरमा से अब न सहा गया । वह दोनों बाहों से उसका दृढ़ आलिङ्गन करती हुई फूट-फूट कर रोने लगी, बोली—"बहू, मैं महा-पापिनी हूँ ।"

बहू ने स्वयं को छुड़ाते हुए धीरे से कहा—"क्यों दीदी ?"

"आह, अब उसे मत सुनो । मैं कह नहीं सकूँगी ।"

× × ×

आँधी की भाँति सुरमा यज्ञदत्त के सामने जा पहुँची। बोली—"बहू को इस प्रकार धोखे में रख छोड़ा है? ओफ़, कैसे भयानक झूँठे हो तुम!"

यज्ञदत्त दंग रह गया।

"यह क्या सुरो?"

"कृतविद्य हो तुम। छिः छिः, तुम्हें लज्जा आनी चाहिए थी।"

यज्ञदत्त कुछ तात्पर्य नहीं समझा, केवल कड़वी बातें सुनने लगा—

"क्या सोच कर विवाह किया था? क्या सोच कर उसे छोड़े हुए हो? मेरे लिए! मेरा मुँह देखकर इस प्रकार धोखा देते आरहे हो?"

"सुरमा, पागल होगई हो क्या?"

"मैं पागल हूँ? मुझमें तुमसे अधिक ज्ञान है, मुझे कहीं अन्यत्र भेज दो।" कहते हुए सुरमा की आँखें लाल होगईं। हाँफती हुई बोली, "एक क्षण भी रहना नहीं चाहती मैं, छिः छिः..."

यज्ञदत्त ने बड़ी जोर से चिल्लाते हुए कहा—"क्या कहती हो?"

"कहती हूँ, तुम झूँठे हो, धोखेबाज हो।"

निमिष मात्र में यज्ञदत्त के माथे के भीतर आग-सी जल उठी; बिना कारण ही उसे लगा, उसके भीतर की आत्मा बाहर निकल कर उसे युद्ध के लिए ललकार रही है। वह ज्ञान-शून्य हो, टेबुल पर रक्खे हुए भारी रूलर को उठाकर जोर से चिल्लाता हुआ बोला—"मैं अधम हूँ, धोखेबाज हूँ झूँठा हूँ; और यह अब उसका प्रायश्चित करता हूँ।" यह कहते हुए उसे पूरी ताकत के साथ अपने सिर पर मार लिया। सिर फटकर झरझर खून बहने लगा। सुरमा अस्फुट स्वर में पुकार उठी, "मैया री!" उसके पश्चात् बेहोश होकर फर्श पर गिर पड़ी। यज्ञदत्त ने उसे देखा, देखा कि उसका स्वयं का तमाम मुँह भी खून से लथपथ होगया है, आँखों में खून चले जाने से सब धुँधला-सा

दिखाई देता है। वह उन्मत्त की भाँति कहने लगा, "अब क्यों ?" इतने में पीछे से किसी ने आकर उसे पकड़ लिया देखा, पत्नी है; रोता हुआ बोला—"तुम आगईं ?"

कन्धे पर सिर रख कर वह बेहोश होगया।

सुरमा जिस प्रकार नीचे से ऊपर भाग आई थी, नई बहू उससे आश्चर्यान्वित एवं शंकित होकर चुपके से पीछे-पीछे आकर, बाहर दरवाजे के पास खड़ी होगई थी। उसने सब बातें सुनी थीं और सब देख लिया था। बहुत-सा सत्य उसके मस्तिष्क में सूर्य के प्रकाश की भाँति स्पष्ट होगया, उसकी छाती की धड़कन भी तेज होगई; आँखों के बाहर कुहरा-सा छाया जारहा था, परन्तु उसने स्वयं को संभाल कर इस विपत्ति के समय पति को गोद में ले लिया।

९

छः दिन पश्चात् भली-भाँति होश आने पर सुरमा ने पूछा—"भय्या की तबियत कैसी है ?"

दासी ने उत्तर दिया, "अच्छी है।"

"मैं देख आऊँ," कहती हुई सुरमा उठी, परन्तु फिर पड़ रही। दासी ने कहा—"तुम अभी बहुत कमजोर हो और बुखार भी आ रहा है, उठो मत, डाक्टर ने मना किया है।"

सुरमा को आशा थी कि यज्ञ भय्या देखने को आएँगे, बहू भी आएगी। एक दिन, दो दिन, करते-करते एक सप्ताह बीत गया, तो भी कोई नहीं आया।

ज्वर अब नहीं आता, परन्तु कमजोरी बहुत है। अब उठने का प्रयत्न करने से शायद उठ सकती थी, परन्तु, जबरदस्त अभिमान के कारण उठने की इच्छा ही नहीं हुई उसे। वह मन-ही-मन उफन कर

रोने लगी, और आँखें पोंछ कर सोचने लगी, अपनी प्रकाश और छाया की कहानी।

दीप्त प्रकाश एवं गाढ़ी छाया लेकर उन लोगों ने खेल आरम्भ किया था, अब प्रकाश बुझता-सा जा रहा है। मध्याह्न का सूर्य पश्चिम की ओर झुक गया है, गाढ़ी छाया इसी से अस्पष्ट और विस्तृत होकर प्रेत की भाँति कङ्कालसार हो गई है। वह छाया अज्ञात अन्धकार की ओर जैसे उसमें मिल जाने के लिए धीरे-धीरे खिसकती जा रही है। रोते-रोते सुरमा सो गई।

शरीर पर किसी ने गरम हाथ रखते हुए मानो बुलाया—"दीदी!"

सुरमा उठकर बैठ गई, बोली—"यह क्या बहू?"

उसकी आँखें लाल हो रही थीं, मुँह सूखा था, ओठों पर स्याही-सी फिर रही थी। सुरमा ने फिर पूछा—"क्यों बहू तुम्हें क्या आ है?"

"मुझे क्या हुआ?" आप मुझे इस घर में लाई थीं, इसीलिए कहने आई हूँ दीदी, मुझे छुट्टी दे दीजिए, मैं जाऊँगी...।"

"क्यों बहिन, कहाँ जाओगी?"

नई बहू सुरमा के पाँवों पर सिर रखकर पृथ्वी पर लोट गई।

सुरमा ने देखा, उसकी देह आग-सी जल रही है। बोली—"यह क्या? तुम्हें तो तेज बुखार चढ़ा हुआ है।" इतने ही में एक नौकरानी चिल्लाती हुई दौड़ी आई। बोली—"दीदी, बहू कहाँ गई? अरी मय्या, बुखार की बेहोशी में ही भाग आई हैं। आज आठ दिन हुए, बेहोश पड़ी हुई हैं। मैया! कैसे आई यहाँ?"

"आठ दिन से बुखार है? डाक्टर देख रहे हैं?"

"कोई नहीं दीदी, कोई नहीं देखता। परसों सबेरे भी बहूजी घण्टे भर तक नल के नीचे सिर किए बैठी रही थीं। इतना मना किया, परन्तु एक भी न सुनी।"

× × ×

सन्ध्या होने से पूर्व सुरमा यज्ञदत्त के कमरे में जाकर रो दी। बोली—"भय्या, बहू का तो अब बचना कठिन है।"

दो-तीन डाक्टरों ने आकर कहा—"जोर की बाय (सन्निपात) आ गई है।"

रात भर यज्ञदत्त सिरहाने बैठा रहा, कितनी ही बार मुँह के पास मुँह ले गया, परन्तु बहू पति को नहीं पहिचान सकी।

डाक्टरों के चले जाने पर यज्ञदत्त रो उठा, "बहू, एक बार आँख खोलकर तो देखो, एक बार कह दो—'क्षमा कर दिया'।"

सुरमा पाँव के पास कपड़े में मुँह छिपा कर अस्फुट स्वर में बोली—"भाभी, क्यों ऐसा दण्ड दे चलीं?"

कौन बात करता? सम्पूर्ण मान, अभिमान, अवज्ञा और अनादर को दूर हटाकर धीरे-धीरे वह अन्त में विलीन हो गई।

× × ×

सुरमा ने कहा—"भय्या कहाँ हैं?"

दासी ने उत्तर दिया—"कल वे पश्चिम की ओर कहीं चले गए हैं।"

"कब आएँगे?"

"पता नहीं, शायद जल्दी ही नहीं आने के।"

"मैं कहाँ रहूँगी?"

"मुनीमजी से कह गए हैं, जितने चाहो उतने रुपए लेकर

तुम्हारी जहाँ खुशी हो, वहाँ रहना।"

सुरमा ने आकाश की ओर देखा, देखा—संसार का प्रकाश बुझ गया है। सूर्य नहीं, चन्द्र नहीं, एक तारा भी दिखाई नहीं देता। इधर-उधर देखा, वह अस्पष्ट छाया भी न जाने कहाँ गायब हो गई है, चारों ओर घोर अन्धकार है। छाती की धड़कन भी जैसे उसकी बन्द होना चाहती है, आँखों की ज्योति भी म्लान और स्थिर होना चाहती है।

दासी ने बुलाया—"दीदी!"

ऊपर की ओर देखते हुए सुरमा ने पुकारा—"यज्ञ भय्या!"

तदुपरान्त धीरे-धीरे लुढ़क पड़ी।

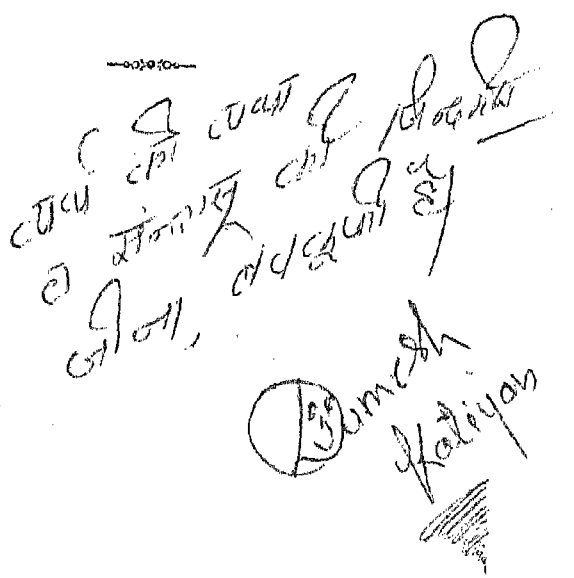

बलिदान निमीषिका

उसका पुकारने का नाम था—लाल । उसका एक अच्छा-सा नाम भी अवश्य था, परन्तु मुझे स्मरण नहीं है । आप सम्भवतः जानते होंगे, लाल शब्द का एक अर्थ प्रिय अथवा प्यारा भी है । पता नहीं, उसका नाम किसने रक्खा था, माता-पिता ने अथवा अन्य किसी ने; परन्तु सत्य यह है कि वह सब को प्रिय था । ऐसा सार्थक नाम बहुत कम लोगों का होता है !

स्कूल की पढ़ाई समाप्त करके हम लोग कॉलेज में भर्ती हुए । वह मेरा सहपाठी था । लाल ने कहा, "मैं व्यापार करूँगा । पढ़ना छोड़ कर, माता से दस रुपए लेकर ठेकेदारी आरम्भ कर दी ।" हम सब साथियों ने कहा—"लाल, तुम्हारी पूँजी तो केवल दस रुपए है, इतनी पूँजी से क्या होगा ?"

उसने हँसते हुए कहा—"और कितनी चाहिए ? यही बहुत है ।"

यह पहले ही कहा जा चुका है कि सब लोग उसे प्यार करते थे । उसे काम मिल गया । इसके

पश्चात् कालिज जाते समय मैं प्रायः ही देखता, वह सिर पर छतरी लगाए कुछ मजदूरों से सड़क की मरम्मत के छोटे-मोटे काम करा रहा है। हम लोगों को देखकर हँसते हुए मजाक करता, "जाओ-जाओ दौड़ो अन्यथा अभी रजिस्टर में अनुपस्थिति नोट हो जाएगी।"

हम लोग जब और छोटे थे, जब वर्नाक्युलर स्कूल में पढ़ते थे, तब वह हम सब का मिस्त्री था। उसकी पुस्तकों के थैले में हर समय एक इमामदस्ते की मूसली, नाखूनगिरी, एक टूटी छुरी, छेद करने के लिए एक नुकीली कील और एक घोड़े का नाल, ये सब औजार पड़े रहते थे। पता नहीं कहाँ से उसने यह सब सामान इकट्ठा किया था; परन्तु कोई काम ऐसा नहीं था, जिसे वह अपने औजारों से न कर सकता हो। स्कूल भर के लड़कों के टूटे छातों की मरम्मत करना, स्लेट का फ्रेम जड़ना, खेल में फटे हुए कपड़ों को सीं देना, इत्यादि न जाने क्या-क्या और कितने कामों को वह कर देता था। वह किसी के भी काम के लिए कभी नाहीं नहीं करता था। अन्य काम भी बड़ी सफाई और खूबसूरती के साथ कर दिया करता था। एक बार कोई स्नान का पर्व था। लाल कुछ पैसों के रङ्गीन कागज खरीद लाया। बाँस की तीली तथा उन कागजों से उसने कुछ खिलौने बनाए। उन खिलौनों को बेचकर उसने ढाई रुपए कमा लिए। उन्हीं पैसों से उसने हम लोगों को भरपेट मूँगफलियाँ खिलाईं।

वर्ष-पर-वर्ष बीतने लगे। हम सब सयाने हुए। जिमनास्टिक की कसरत में लाल के बराबर कोई भी नहीं था। उसके शरीर में जैसे असाधारण बल था, वैसे ही उसमें साहस की कोई सीमा नहीं थी। भय किसे कहते हैं, यह सम्भवतः वह जानता ही नहीं था। सभी की सहायता के लिए वह सदैव प्रस्तुत रहता था, सभी की विपत्ति में वह सब से आगे बढ़कर साथ देने को उपस्थित हो जाता था।

उसमें केवल एक ही दोष बहुत बड़ा था। किसी को डराने

का अवसर मिलने पर वह किसी प्रकार स्वयं को सँभाल नहीं पाता था। इस मामले में बच्चे, बूढ़े, गुरुजन—सब उसके लिए बराबर थे। हम लोग कोई सोच ही नहीं पाते थे कि डराने के लिए ऐसे अद्‌भुत उपाय उसे पलभर में ही कैसे सूझ जाते थे। दो-एक घटनाएँ सुनिए—

मोहल्ले में मनोहर चटर्जी के घर महाकाली की पूजा थी। आधीरात को जब बलिदान का समय आया तो देखा गया कि बलि देने वाला लुहार अनुपस्थित है। लोग उसे लाने के लिए दौड़े गए, परन्तु जाकर देखा, वह पेट की पीड़ा से बेहोश पड़ा तड़प रहा है।

लोगों ने लौटकर जब यह खबर दी तो सब सिर पर हाथ रखकर बैठ गए। अब क्या हो! क्या किया जाय? इतनी रात को घातक कहाँ मिलेगा? यह तो बड़ा अनर्थ हुआ। देवी की पूजा व्यर्थ खण्डित हुई जा रही है। इतने में एक आदमी ने कहा—"लाल बकरे की बलि दे सकता है, उसके हाथ में इतनी शक्ति है कि एक ही बार में बकरे का मस्तक काट दे। इस प्रकार वह अनेकों बकरे काट चुका है।"

अब कुछ लोग लाल के पास दौड़े गए। लाल को सोते से जगाया गया। लाल उठ बैठा और सुनकर बोला—"न, मुझसे यह न होगा।"

लोगों ने कहा—"मना मत करो। देवी की पूजा में विघ्न पड़ेगा तो सबका सर्वनाश हो जाएगा। सबके ऊपर देवी का कोप पड़ेगा।"

लाल ने कहा—"सर्वनाश हो तो हो जाय, बचपन में यह काम मैंने किया था, परन्तु अब नहीं करूँगा।"

जो बुलाने आए थे, वे सिर पीटने लगे। "बस, मुहूर्त्त दस-पंद्रह मिनट तक और है। मुहूर्त्त निकल जाने पर सब भरभण्ड हो जाएगा, पूजा पूरी न हो सकेगी। तब कोई भी यहाँ महाकाली के कोप से न बच सकेगा।"

लाल के पिता ने आकर जाने की आज्ञा दी। कहा—"ये लोग लाचार होकर ही आए हैं, न जाना अन्याय होगा, अतः तुम जाओ।"

इस आज्ञा का पालन न करना लाल के वश की बात न थी।

लाल को देखकर चटर्जी महाशय की चिन्ता दूर हुई। समय अधिक नहीं था। झटपट बकरे को देवी के नाम पर उत्सर्ग कर, उसके मस्तक पर सिन्दूर लगाया गया, गर्दन में पुष्पमाला डाली गई। इसके पश्चात् गिरा कर उसे बलिदान के काठ के भीतर रक्खा गया। घर के सब लोग जोर से 'माँ, माँ !' कहते हुए चिल्लाने एवं अपनी भक्ति का प्रचण्ड प्रदर्शन करने लगे। उस कोलाहल के बीच उस बेचारे विवश जीव का मिमियाना, अन्तिम करुण-आर्त्तनाद न जाने कहाँ लुप्त हो गया। लाल के हाथ का खाँड़ा पलभर में ही ऊपर उठा एवं पूरी शक्ति के साथ नीचे गिरा, उसके साथ ही बलि के बकरे के कटे हुए कण्ठ से रक्त का फव्वारा छूटा एवं उसने वहाँ की पृथ्वी को लाल कर दिया। लाल क्षणभर तक अपनी आँखें बन्द किए रहा।

धीरे-धीरे ढाक-ढोल एवं शंख-घड़ियाल का सम्मिलित शब्द धीमा पड़ गया। दूसरा बकरा, जो समीप ही खड़ा काँप रहा था, उसके मस्तक पर भी सिन्दूर का टीका लगाया गया एवं कण्ठ में पुष्प-माला पहिनाई गई। फिर उसकी भी उसी बलि के काठ पर गर्दन रक्खी गई। उसका भी वैसा ही दीन-दृष्टि से प्राणों की भीख माँगते हुए मिमियाने एवं चिल्लाने का करुण-स्वर सुनाई पड़ा। बहुत से लोगों की 'माँ, माँ !' कह कर माता के प्रति भक्ति प्रदर्शित करने की भारी पुकार गूँज उठी। लाल के हाथ का वह रक्त-रञ्जित खाँड़ा पलक मारते ही फिर उठा एवं नीचे गिर गया। पशु का शरीर दो टुकड़े होकर पृथ्वी पर कुछ देर तक छटपटाता रहा, हाथ-पाँव पैंटक कर अन्तिम बार न जाने क्या फरियाद करके बिचारा स्थिर हो गया। उसके कटे हुए कण्ठ से निकली हुई रक्त की धारा ने उस स्थान की पृथ्वी को और भी अधिक लाल कर दिया।

बाजा बजाने वाले पागलों की भाँति जोर-जोर से ढोल पीट रहे थे। आँगन में भीड़ किए हुए बहुत से लोग भाँति-भाँति का कोलाहल कर रहे थे। सामने के बरामदे में ऊनी आसन पर बैठे हुए मनोहर चटर्जी इष्टदेवी के नाम का जप कर रहे थे। अचानक लाल एक भयानक हुँकार कर उठा। सारा शोरगुल थम गया। सब लोग आश्चर्य से सन्न रह गए। यह क्या? लाल की असंभव रूप से फैली हुई दोनों आँखों की पुतलियाँ इधर-उधर घूम रही थीं। उसने चिल्लाते हुए जोर से कहा—"और पाँठा (बकरा) कहाँ है?"

घर के किसी व्यक्ति ने भयभीत होते हुए उत्तर दिया—"और पाँठा तो नहीं है, हमारे यहाँ केवल दो की बलि दी जाती है।"

लाल अपने हाथ के रक्त-रञ्जित खाँड़े को दो-तीन बार सिर के ऊपर घुमाते हुए गरज उठा—"पाँठा नहीं है? यह नहीं होगा। मेरे ऊपर खून सवार है। या तो पाँठा लाओ, अन्यथा आज मैं जिसे पाऊँगा, उसी को पकड़ कर नर-बलि दूँगा।"

इसके पश्चात् 'माँ, माँ, जय महाकाली' कह कर वह छलाँग मार कर, उछल कर, बलि-काष्ठ के इस ओर से उस ओर पहुँच गया। उसके हाथ का खाँड़ा उस समय झन्नाटे के साथ सिर के ऊपर घूम रहा था।

उस समय जो कुछ हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सब लोग एक साथ दरवाजे की ओर भागे कि कहीं लाल बलिदान के लिए उन्हें ही न पकड़ ले। भागने के प्रयत्न में वह धक्कामुक्की और रेल-पेल हुई कि उस समय वही दृश्य उपस्थित हो गया, जो शिवगणों द्वारा दक्ष-यज्ञ विध्वंस करने पर कभी हुआ होगा। कोई गिर कर दूर लुढ़क गया, कोई घुटनों के बल रेंगकर किसी के पाँवों के भीतर अपना सिर छिपाने का प्रयत्न करने लगा, किसी का कण्ठ किसी की बगल में ऐसा दब गया कि उसका दम घुटने लगा। एक आदमी दूसरे को

फाँद कर भागने का प्रयत्न करते समय मुँह के बल औंधा गिर पड़ा, उसके दाँत टूट गए। परन्तु यह हाल दो मिनट तक ही रहा। तदु-परान्त सारा आँगन खाली होगया।

लाल गरजता हुआ बोला—"मनोहर चटर्जी कहाँ है? पुरोहित कहाँ गया?"

पुरोहितजी रोगी व्यक्ति थे, इस गड़बड़ी में अवसर पाकर वे पहिले ही देवी की प्रतिमा के पीछे जा छिपे थे। गुरुदेव कुशासन पर बैठे हुए दुर्गापाठ कर रहे थे, झटपट उठकर ठाकुरद्वारे के दालान के एक मोटे से खम्भे की आड़ में छिप गए। परन्तु मनोहर बाबू बहुत मोटे थे, अतः उनके लिए इधर-उधर भागना अत्यन्त कठिन था। लाल ने आगे बढ़ कर अपने बाएँ हाथ से उनका एक हाथ कस कर पकड़ लिया तथा कहा—"चलो, बलिकाष्ठ पर अब तुम अपना गला रक्खो।"

एक तो लाल की बज्र की भाँति कसी हुई मुट्ठी, उस पर उसके दाहिने हाथ में खाँड़ा, भय के कारण चटर्जी के प्राण सूख गए। रुँआसे कण्ठ से वे विनय करने लगे—"लाल, बेटा, तनिक शान्त होकर तो देखो, मैं पाँठा नहीं, आदमी हूँ। मैं रिश्ते में तुम्हारा ताऊ होता हूँ, भैया! तुम्हारे पिता मेरे छोटे भाई की भाँति हैं।"

लाल ने कहा—"मैं यह सब कुछ नहीं जानता। मुझ पर खून सवार है। चलो, मैं तुम्हारी बलि दूँगा, माता का यही आदेश है।"

चटर्जी महाशय जोर से रो उठे, बोले—"न बेटा, माता का यह आदेश नहीं है, कभी नहीं है। माता तो जगत्-जननी—सबकी माता हैं।"

लाल ने कहा—"जगत-जननी हैं! यह ज्ञान तुम्हें है? और पाँठा बलि दोगे? फिर मुझे पाँठा काटने को बुलाओगे? बोलो!"

चटर्जी ने रोते हुए कहा—"कभी नहीं भैया, अब कभी बलि नहीं दूँगा। मैं माँ के सम्मुख तीन बार प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि आज से मेरे घर में बलिदान नहीं होगा।"

लाल ने कहा—"ठीक कहते हो न ?"

चटर्जी बोले—"ठीक कहता हूँ भैया, बिल्कुल ठीक कहता हूँ, अब कभी नहीं होगा। मेरा हाथ छोड़ दो बेटा, मैं शौच को जाऊँगा।"

लाल ने हाथ छोड़ते हुए कहा—"जाओ, तुम्हें छोड़े देता हूँ, परन्तु पुरोहित किधर गया ? और गुरुदेव ? वे कहाँ हैं ?"

यह कह कर वह एक बार फिर हुँकार भरते हुए छलाँग मार कर जैसे ही ठाकुरद्वारे के दालान की ओर बढ़ा, वैसे ही प्रतिमा के पीछे से तथा खम्भे की आड़ से दो अलग-अलग कण्ठों की भयार्त्त रोने की आवाज सुनाई दी। महीन एवं मोटे कण्ठ के दोनों शब्द ऐसे अद्भुत एवं हँसाने वाले थे कि लाल स्वयं को भी न सँभाल सका, हाः हाः हाः करके जोर से हँसते हुए उसने अपने हाथ का खाँड़ा फेंक दिया तथा एक दौड़ लगाकर घर से बाहर निकल गया।

तब किसी को यह समझना शेष न रहा कि खून सवार होने की बात एकदम मिथ्या थी, यह सब उसकी चालाकी थी। लाल अब तक शैतानी करके सब को भयभीत कर रहा था। पाँच मिनट के भीतर ही भागे हुए सब लोग पुनः आ एकत्र हुए।

देवी की पूजा तब भी शेष थी, उसमें यथेष्ट विघ्न पड़ चुका था। उस भारी कोलाहल के बीच चटर्जी महोदय सबके सामने बार-बार प्रतिज्ञा करने लगे—"इस नालायक लड़के में कल सबेरे ही, उसके पिता से कह कर यदि पचास जूते न लगवाऊँ तो मेरा नाम मनोहर चटर्जी नहीं।"

परन्तु लाल को जूते नहीं खाने पड़े। सबेरे ही वह घर से निकल कर ऐसा गायब हुआ कि सात-आठ दिन तक उसका कुछ

पता ही नहीं चला। सात-आठ दिन बाद एक दिन अँधेरे में छिपकर वह मनोहर चटर्जी के घर में जा घुसा तथा उनसे पाँव छू कर क्षमा माँग ली, उससे इस बार वह पिता के क्रोध से मुक्ति पा गया।

ख़ैर, वह चाहे जो हो, चटर्जी महोदय ने देवी के समक्ष बलिदान न करने की जो शपथ खाई थी, उसे उन्होंने कभी नहीं तोड़ा। उनके घर से काली-पूजा का बलिदान उठ गया।

मुकद्दमे का परिणाम

वृद्ध वृन्दावन सामन्त की मृत्यु के पश्चात् उसके दोनों लड़के शिबू और शम्भू ने प्रतिदिन लड़ाई-झगड़ा करते हुए छै महीने एक ही चौके और एक ही घर में काट दिए, तदुपरान्त एक दिन न्यारे हो गए।

गाँव के ज़मींदार चौधरी महाशय ने स्वयं ही आकर उनकी खेती-बारी, जमीन-जायदाद, तालाब-बगीचा सबका बँटवारा कर दिया। छोटा भाई सामने के तालाब के उधर दो मिट्टी के घर बना कर छोटी बहू एवं बाल-बच्चों को लेकर पुराने घर में रहना छोड़ गया।

सबका बँटवारा हो गया, केवल एक छोटे से बाँस के झाड़ का हिस्सा नहीं हो सका। कारण शिबू ने आपत्ति करते हुए कहा—"चौधरी महाशय, बाँस का झाड़ तो मुझ अकेले को ही चाहिए। घर की सब चीजें पुरानी हो गई हैं, छप्पर को बदलवाने एवं खूँटा-खूँटी लगाने के लिए बाँस की मुझे रोज जरूरत है। गाँव में किससे माँगने जाऊँगा, बताइए?"

शम्भू प्रतिवाद के लिए उठकर बड़े भाई के

मुँह की ओर हाथ हिलाते हुए बोला—"अहा, इन्हीं के घर में खूँटा-खूँटी के लिए बाँस चाहिए—और हमारे घर का काम केले का पेड़ काट कर लगा देने से ही हो जाएगा, है न ? यह नहीं होगा; यह नहीं होगा चौधरी महाशय, बाँस का झाड़ मुझे न मिलने से नहीं चलेगा, यह कहे देता हूँ।"

मीमांसा यहीं तक होते-होते रह गई। अस्तु, सम्पत्ति रही दोनों भागीदारों की। उसका फल यह हुआ कि शम्भू यदि उसकी एक भी टहनी पर हाथ डालने आता तो शिबू गड़ाँसा लेकर दौड़ा आता और शिबू की स्त्री के बाँस के झाड़ के नीचे पाँव रखते ही शम्भू लाठी लेकर मारने दौड़ता।

उस दिन सबेरे इस बाँस के झाड़ के कारण ही दोनों परिवारों में बड़ा झगड़ा होगया। षष्ठीदेवी की पूजा अथवा ऐसे ही किसी देव-कार्य के लिए बड़ी बहू गङ्गामणि को कुछ बाँस के पत्तों की आवश्यकता थी। गँवई-गाँव में यह वस्तु कुछ दुर्लभ नहीं थी, परन्तु अपना होते हुए दूसरे के आगे हाथ फैलाने में उसे शरम लगती थी। विशेषकर उसके मन में भरोसा था कि देवर इस समय तक अवश्य ही खलिहान पर चला गया होगा—अकेली छोटी बहू क्या कर सकेगी।

परन्तु किसी कारणवश शम्भू को उस दिन खलिहान पर जाने में देर होगई थी। वह बासी भात खाकर हाथ धोने का उपक्रम कर रहा था, इसी समय छोटी बहू ने तालाब के घाट से गिरते-पड़ते भागते हुए पति को आकर समाचार दिया। शम्भू की कहीं तो रही पानी की घण्टी, कहीं रहा हाथ-मुँह धोना, उसने अरे, अरे शब्द से सारे मुहल्ले को गुँजाते हुए तीन कुदान में ही पास आकर भाभी के हाथ से बाँस के पत्ते छीन कर फेंक दिए; एवं साथ-ही-साथ बड़ी भौजाई के प्रति जिन वाक्यों का प्रयोग किया, वे सब उसने चाहे जहाँ से सीखे हों, रामायण के लक्ष्मण-चरित्र से नहीं सीखे थे, यह निस्सन्देह कहा जा सकता है।

इधर बड़ी बहू ने रोते-रोते घर जाकर अपने पति के पास खबर भेज दी। शिबू हल छोड़कर हाथ में हँसिया लिए दौड़ता आ पहुँचा एवं बाँस के झाड़ के पास ही खड़ा हो अनुपस्थित छोटे भाई के उद्देश्य से अस्त्र घुमाते हुए चीत्कार करके ऐसा उपद्रव खड़ा कर दिया कि भीड़ जमा होगई । उससे भी जब क्षोभ नहीं मिटा, तब वह जमींदार के घर नालिश करने चल दिया एवं यह कह कर धमका आया कि चौधरी साहब इसका न्याय करें तो अच्छा है, अन्यथा वह अदालत में जाकर एक नम्बर का मुकद्दमा चलाएगा—तभी उसका नाम शिबू सामन्त होगा।

उस ओर शम्भू बाँस के पत्ते छीनने का कर्त्तव्य पूरा करके ही खुश होकर हल-बैल ले खेत पर चला गया था। स्त्री की मनाही नहीं सुनी । मकान में छोटी बहू अकेली थी। इसी बीच जेठ वहाँ आकर अपनी चीत्कार द्वारा मुहल्ले को स्तब्ध कर, वीरदर्प से इकतरफा विजयी बन कर चला गया। छोटे भाई की बहू होने के कारण ही वह सब कुछ कानों से सुनकर भी किसी बात का जवाब नहीं दे सकी। इससे उसके मनस्ताप एवं पति के विरुद्ध रोष की सीमा नहीं रही । वह रसोईघर की ओर भी नहीं गई। उदास मुँह बरामदे के ऊपर पाँव फैलाए हुए बैठी रही।

शिबू के घर में भी यही दशा थी। बड़ी बहू प्रतिज्ञा करके पति के लौटने की राह देखती हुई बैठी थी। या तो इसका फैसला कराओ, अन्यथा वह पानी तक मुँह में न डाल कर मायके चली जाएगी । दो बाँस के पत्तों के लिए देवर के हाथ से इतनी लाञ्छना !

समय डेढ़ पहर का होगया, तो भी शिबू का कोई पता नहीं । बड़ी बहू छटपटाने लगी, क्या पता, चौधरी साहब के घर से ही वे एक नम्बर की नालिश दायर करने को सीधे अदालत को न चले गए हों।

इसी समय बाहर के दरवाजे पर झटाक् से जोर का धक्का देते हुए शम्भू के बड़े लड़के गयाराम ने प्रवेश किया। उसकी आयु सोलह-सत्रह वर्ष अथवा इतनी ही कुछ थी। परन्तु इस आयु में ही क्रोध और भाषा में वह अपने बाप को भी पीछे छोड़ गया था। वह गाँव के माइनर स्कूल में पढ़ता है। आजकल मॉर्निङ्ग (सबेरे का) स्कूल है, साढ़े दस बजे ही स्कूल की छुट्टी हो गई थी।

गयाराम की जब एक वर्ष की आयु थी तब उसकी माता की मृत्यु हो गई थी। उसका पिता शम्भू दूसरा विवाह कर नई बहू को घर ले आया था, परन्तु इस मातृ-हीन बालक को बड़ा करने का भार ताई के ऊपर ही पड़ा एवं इतने दिनों तक दोनों भाइयों के अलग न होने तक यह भार वही वहन करती आ रही थी। विमाता के साथ उसका किसी भी दिन कोई भी विशेष सम्बन्ध नहीं रहा—यही क्यों, उसके नए घर में चले जाने पर भी गयाराम को जब कभी सुविधा मिलती, वहीं भोजन कर लेता था।

आज उसने स्कूल के बाद घर में घुसते ही विमाता के मुँह एवं भोजनादि के प्रबन्ध को देखकर प्रज्वलित हुताशन के समान जलता हुआ इस घर में चला आया। ताई का मुँह देखकर उसकी उस अग्नि में पानी नहीं पड़ा, किरासिन तेल पड़ गया। उसने बिना कुछ भूमिका बाँधे ही कहा—"भात दो ताई।"

ताई ने बात नहीं की; जैसी बैठी थी, वैसी ही बैठी रही।

क्रुद्ध गयाराम जमीन पर एक पाँव मारता हुआ बोला "भात देती हो, न दो तो कहो ?"

गङ्गामणि ने क्रोधसहित मुँह उठा कर बरसते हुए कहा—"तेरे लिए भात राँधने बैठी है, वही देगी। कहती हूँ, तेरी सौतेली माँ अभागी भात नहीं दे सकी, जो यहाँ आकर हँगामा मचा रहा है ?"

गयाराम चिल्लाता हुआ बोला—"उस अभागी की बात नहीं जानता। तू देती है या नहीं बता ? न दे तो चलूँ मैं तेरी सब हाँड़ी-मटकी तोड़ने के लिए।" कह कर वह भिसौरे के पास के ईंधन के ढेर में से एक लकड़ी उठा कर रसोईघर की ओर चल दिया।

ताई भयभीत हो चीत्कार कर उठी—"गया ! हरामजादे ! डकैत ! ऊधमदंगा मत कर, कहे देती हूँ। दो दिन भी नहीं हुए मैंने नई हाँडी-मटकी निकाली हैं, यदि कोई फूट गई तो तेरे ताऊ से कह कर तेरा एक पाँव यदि न तुड़वा दूँ तो तब कहना, हाँ !"

गयाराम ने रसोई घर की साँकल से जाकर हाथ लगाया। अचानक एक नई बात याद आ जाने से वह अपेक्षाकृत शान्त भाव से लौटते हुए बोला—"अच्छा भात नहीं देतीं तो मत दो ! मैं भी नहीं माँगता। नदी के किनारे बटवृक्ष के नीचे ब्राह्मणों की सभी लड़कियाँ टोकरा भर-भरकर चिउड़ा-भुड़की* ले जाकर पूजा कर रही हैं, जो माँगता है, उसी को देती हैं, देख आया हूँ। मैं जा रहा हूँ उन्हीं के पास।"

गङ्गामणि को उसी समय याद आया, आज अरण्यषष्ठी है, एवं पल भर में ही उसका मिजाज कड़ेपन से कोमलता की ओर झुक गया। तथापि मुँह पर जोर बनाए रख कर कहा—"तो जा न ! कैसे खा सकेगा देखूँ ?"

"देखना तब", कह कर गयाराम द्वारा एक फटा अँगोछा खींच कर कमर पर लपेटते हुए प्रस्थान करने का उद्योग करते ही गङ्गा-मणि उत्तेजित होकर बोली—"आज षष्ठी के दिन दूसरे के घर यदि खाया तो तेरी क्या दुर्गति करती हूँ, उसे देखेगा अभागे !"

---

* मुड़की—धान की खीलों को गुड़ की चासनी में पाग कर बनाया जाने वाला एक खाद्य।

गया ने उत्तर नहीं दिया। रसोईघर में घुस कर एक खौंच (हथेली भर) तेल लेकर माथे पर मलते-मलते बाहर निकलते हुए देखकर ताई आँगन में आकर डराती हुई कहने लगी—"डकैत का! देवी-देवता के साथ गँवारपन! डुबकी लगा कर न लौट आया तो अच्छा नहीं होगा, कहे देती हूँ। आज मैं वैसे ही गुस्से में हूँ।"

परन्तु गयाराम डरने वाला लड़का नहीं है। वह केवल दाँत बाहर निकाल कर ताई को अँगूठा दिखाता हुआ भाग कर चला गया।

गङ्गामणि उसके पीछे-पीछे सड़क तक आकर चिल्लाने लगी—"आज षष्ठी के दिन किसके लड़के भात खाते हैं जो तू ही भात खाना चाहता है? पटाली गुड़ के सन्देश से, केले से, दूध-दही से फलाहार नहीं, कर सकता, जो तू जाएगा दूसरे घर माँग कर खाने के लिए? केवट के घर तू ऐसा नवाब जन्मा है?"

गया कुछ दूरी पर घूम कर खड़े होते हुए बोला—"तो तूने दिया क्यों नहीं जलमुँही? क्यों कहा कि कुछ नहीं है?"

गङ्गामणि गाल पर हाथ रखकर दंग होती हुई बोली—"सुनो लड़के की बातें। कब मैंने कहा तुझ से, कुछ नहीं है? न कहीं स्नान, न कुछ, डकैत की भाँति केवल कहा 'दे भात'। भात क्या आज खाया जाता है जो देती? मैं कहती हूँ, सब-कुछ तो मौजूद है, डुबकी तो लगा आ।"

गया ने कहा—"फलाहार तेरा सड़ जाय। रोज-रोज अभागिनें लड़ाई करेंगी और रसोईघर की साँकल चढ़ाकर पाँव फैलाए बैठी रहेंगी और रोज मैं तीसरे पहर सूखा भात खाऊँगा? नहीं, मैं तुम लोगों में से किसी के यहाँ नहीं खाना चाहता।" उसको हन्-हन् करता हुआ जाते देखकर गङ्गामणि उसी जगह खड़ी होकर रोती-रोती गला फाड़ने लगी—"आज षष्ठी के दिन किसी से माँग-खा कर

अमङ्गल मत करना, मेरे राजा बेटा ! अच्छा तो चार पैसे दूँगी रे सुन ।"

गंगाराम ने भौंह भी नहीं उठाई, झटपट चला गया । चलते-चलते कह गया, "मुझे नहीं चाहिए फलाहार, मुझे नहीं चाहिए पैसा । तेरे फलाहार पर मैं..."इत्यादि इत्यादि ।

वह दृष्टि से ओझल हो गया । गंगामणि घर लौट कर क्रोध, दुख, अभिमान से निर्जीव की भाँति बरामदे के ऊपर आ बैठी एवं गया के दुर्व्यवहार से मर्माहत हो उसकी विमाता को कोसने लगी ।

परंतु नदी के मार्ग पर चलते-चलते गया के कानों में ताई की बातें गूँजने लगीं । एक तो अच्छे भोजन की ओर स्वभावतः ही उसको अधिक लालच था । पटाली गुड़ के सन्देश, दही, दूध, पके केले, उसके ऊपर चार पैसा दक्षिणा—उसका मन बहुत जल्दी नरम होने लगा ।

स्नान करके गयाराम प्रचण्ड भूख लिए लौट आया । आँगन में खड़े होकर पुकारा "फलाहार की सब चीजें शीघ्र लेकर आओ, ताई । मुझे बड़ी भूख लग रही है । परन्तु पटाली सन्देश कम देगी तो आज तुझी को खा डालूँगा ।"

गंगामणि तभी ही गाय की टहल करने के लिए ग्वालघर में घुसी थी । गया की पुकार सुनकर मन-ही-मन अपनी गलती समझ गई । घर में गुड़, दूध, दही, चिउड़ा, सब था, परंतु पके केले नहीं थे, पटाली गुड़ के सन्देश भी नहीं थे । तब तो गया को अटकाने के लिए जो मुँह में आया वही कह कर लालच दिखा दिया था ।

उसने वहीं से उत्तर देते हुए कहा, "तू झटपट भीगे कपड़े बदल ले बेटा, मैं तालाब से हाथ धोकर आती हूँ ।"

"जल्दी आ," कहकर हुकुम चलाता हुआ गया कपड़े बदल स्वयं

ही एक आसन बिछा घंटी में पानी भर तैयार होकर बैठ गया। गंगामणि झटपट हाथ धो आकर उसका प्रसन्न मिजाज देख खुश होती हुई बोली—"यही तो मेरा राजा बेटा है! बात ही बात में क्या नाराज होना अच्छा है बेटे।" कहकर उसने भण्डार में से भोजन की सब वस्तुएँ लाकर सामने उपस्थित कर दीं।

गयाराम ने पलभर में सब वस्तुओं को देखकर तीक्ष्ण स्वर में पूछा, "पके केले कहाँ हैं?"

गंगामणि इधर-उधर करती हुई बोली—"ढाँकने की याद नहीं रहे बेटे, सब को चूहे खा गए। एक बिल्ली पाले बिना अब काम नहीं चलेगा।"

गया हँसकर बोला "चूहे कब खा गए। तेरे पास नहीं थे, यह क्यों नहीं कहती?"

गंगामणि अवाक् होकर बोली—"यह क्या बात है रे! चूहे केले नहीं खाते?"

गया चिवड़ा-दही मिलाते-मिलाते बोला—"अच्छा, खाते हैं; केलों की मुझे जरूरत नहीं है, पटाली-सन्देश ले आ। कम मत लाना अच्छा!"

ताई फिर भण्डारघर में जाकर झूठमूठ को कुछ देर तक हाँड़ी-मटकी हिलाकर भयभीत-सी होकर कह उठी, "अरे, उन्हें भी चूहे खा गए बेटे, एक भी नहीं बचा, न जाने कब भूल से हाँडी का मुँह खुला छोड़ गई..."

उसकी बात समाप्त होते न होते गया आँखें लाल कर चिल्ला उठा, "पटाली-गुड़ को चूहे कब खाते हैं राक्षसी! मेरे साथ चालाकी! तेरे पास यदि कुछ नहीं है तो मुझे क्यों बुलाया?"

ताई बाहर आकर बोली—"सच कहती हूँ, गया .."

गया उछल कर खड़ा हो गया, "फिर भी कहती है सच है। जा। मैं तेरा कुछ नहीं खाना चाहता।" कह कर उसने पाँव से ठोकर मारकर सब वस्तुओं को आँगन में फैला दिया। बोला—"अच्छा, मैं मज़ा दिखाता हूँ," कह कर वह उसी लकड़ी को हाथ में उठाकर भण्डार घर की ओर लपका।

गंगामणि 'हाँ हाँ' कहती दौड़ पड़ी, परंतु पलक मारते क्रुद्ध गयाराम ने हाँडी-मटकी फोड़कर चीज़-वस्त फैला कर एकाकार करदीं। उसे रोकते समय हाथ के ऊपर एक मामूली-सी चोट भी खाली।

ठीक इसी समय शिबू ज़मींदार के घर से लौट आया। हंगामा सुनकर चिल्लाते हुए कारण पूछा तो गगामणि पति का सहारा पाकर रो उठी एवं गयाराम हाथ की लकड़ी फेंक कर सरपट भाग खड़ा हुआ।

शिबू ने क्षुब्ध स्वर में पूछा—"क्या बात है?"

गंगामणि ने रोते हुए कहा—"गया हमारा सर्वस्व नष्ट कर मेरे हाथ में एक चोट मार कर भाग गया है। यह देखो, सूज गया है।" कहकर उसने पति को हाथ दिखा दिया।"

शिबू के पीछे उसका छोटा साला था। होशियार और पढ़ा लिखा समझ कर जमींदार के घर जाते समय शिबू उसे उस मुहल्ले से बुलाकर ले गया था। उसने कहा—"सामन्तजी, यह सब छोटे सामन्त की कारसाजी है। लड़के से उसी ने यह काम कराया है?" "क्या कहती हो दीदी, यही है न?"

गंगामणि का उस समय हृदय जल रहा था, उसने उसी समय गर्दन हिलाकर कहा—"ठीक है भाई। उसीने मुँह जले लड़के को सिखा कर मुझे मार खिलाई है। इसका तुम्हें क्या करना है, करो, अन्यथा मैं गले में फाँसी लगा कर मर जाऊँगी।"

अब तक शिबू ने नहाया-खाया नहीं था, जमींदार के पास भी ठीक विचार नहीं हुआ, उस पर भी घर में पाँव रखते-न-रखते यह काण्ड देखा, उसे फिर भले-बुरे का ज्ञान नहीं रहा। वह एक प्रचण्ड सौगन्ध खाकर कह उठा, "अब मैं जा रहा हूँ थाने में दरोगा के पास। इसका नतीजा न चखा सकने पर मैं विन्दु सामन्त का लड़का नहीं।"

उसका साला पढ़ा-लिखा आदमी है, विशेषकर उसे गया के ऊपर पहले से ही क्रोध था, उसने कहा—"कानून के अनुसार इसका नाम अनाधिकार प्रवेश है। लाठी लेकर घर पर चढ़ाई कर देना, चीज-वस्त नष्ट करना, स्त्रियों के शरीर पर हाथ उठाना—इन सबका दण्ड छै महीने की जेल है। सामन्तजी, तुम कमर बाँधकर खड़े हो जाओ। देखो, मैं किस तरह से बाप-बेटे को एक साथ जेल भेजता हूँ।"

शिबू ने फिर दुबिधा नहीं की, साले का हाथ पकड़ कर थाने में दरोगा से मिलने के लिए प्रस्थान कर दिया।

गंगामणि को अन्य सबकी अपेक्षा अधिक क्रोध आया देवर और छोटी बहू के ऊपर। वह इसी बात को लेकर एक हलचल खड़ी करने के उद्देश्य से किवाड़ में साँकल लगा कर, उसी जलाने की लकड़ी को हाथ में लिए हुए देवर शम्भू के आँगन में आ खड़ी हुई। उच्च स्वर से बोली—"क्योंजी छोटे देवर, लड़के द्वारा मुझे पिटवाओगे ? अब बाप-बेटे एक साथ हवालात में जाओ।"

शम्भू हाल ही में अपने दूसरे विवाह के लड़के के साथ फलाहार समाप्त कर खड़ा हुआ था, बड़ी भौजाई की मूर्त्ति एवं उसके हाथ में जलाने की लकड़ी देख कर हतबुद्धि हो गया, कहा—"क्या हुआ ? मैं तो कुछ भी नहीं जानता !"

गंगामणि ने मुँह बिगाड़ते हुए उत्तर दिया—"अधिक बनने की जरूरत नहीं है ! दरोगा आ रहा है, उसके पास जाकर कहना

कि कुछ जानते हो या नहीं !"

छोटी बहू घर से बाहर निकल कर एक खूँटी पर अँगूठा रख कर चुपचाप खड़ी हो गई, शम्भू मन-ही-मन डरते हुए पास आकर गंगामणि का एक हाथ पकड़ता हुआ बोला—"शपथ खाकर कहता हूँ बड़ी भाभी, मैं कुछ भी नहीं जानता।"

बात सच्ची है, बड़ी बहू स्वयं भी जानती है, परन्तु उस समय उदारता का समय नहीं था। उसने शम्भू के मुँह पर ही सोलहो आना दोष रखकर, झूठ-सच लगाते हुए गयाराम की करतूत का वर्णन कर दिया। इस लड़के को जो लोग जानते हैं, उन्हें इस घटना पर अविश्वास करना कठिन था।

स्वल्पभाषिणी छोटी बहू ने अब मुँह खोला; पति से कहा—"क्यों, जो मैंने कहा था वही हुआ या नहीं। कितनी बार कहा, उस डाकू लड़के को घर में मत घुसने दो, अन्यथा तुम्हारे छोटे लड़के को मार-मार कर किसी दिन खून कर डालेगा। यह बात ध्यान में ही नहीं आती थी। अब तो पक्की हो गई ?"

शम्भू ने अनुनय करके गंगामणि से कहा—"तुम्हें मेरी कसम बड़ी भाभी, दादा क्या सचमुच थाने गए हैं ?"

उसके करुण कण्ठस्वर से बहुत कुछ नरम होती हुई बड़ी बहू ने जोर देकर कहा—"तुम्हारी क़सम देवर, गए हैं, साथ में मेरा पाँचू भी गया है।"

शम्भू अत्यन्त भयभीत हो गया। छोटी बहू पति को लक्ष्य करके कहने लगी, "रोज ही कहती हूँ दीदी, कहीं पर नदी के ऊपर जो सरकारी पुल बन रहा है, वहाँ ले जाकर उसे काम पर लगा दो। वे चाबुक मारेंगे और काम कराएँगे—भागकर जा नहीं सकता, दो दिन में ही सीधा हो जाएगा। सो नहीं—स्कूल में भेजते हैं पढ़ने को। लड़का जैसे वकील-मुख्तार हो जाएगा।"

शम्भू कातर होता हुआ बोला—"अरे वहाँ क्या उसे यों ही नहीं भेजा ! सब लोग क्या वहाँ से घर लौट पाते है—आधे लोग मिट्टी में दबकर न जाने कहाँ चले जाते हैं, उनका पता ही नहीं मिलता।"

छोटी बहू बोली—"तब बाप-बेटा मिलकर जेल जाकर भुगतो।"

बड़ी बहू चुप रही। शम्भू उसका हाथ पकड़कर बोला—"मैं कल ही छोकरे को ले जाकर पाँचला के पुल के काम में लगा दूँगा, भाभी, दादा को शान्त करो। ऐसा फिर नहीं होगा।"

उसकी पत्नी ने कहा—"झगड़ा-टंटा तो केवल इसी धींगरे के कारण होता है। तुमसे भी तो कई बार कहा है दीदी, उसे घर के दरवाजे में मत घुसने दो—सिर पर मत चढ़ाओ। मैं कुछ नहीं कहती इससे, अन्यथा उस महीने तुम्हारे मर्तवान के केले की गहर को काटकर रात में कौन ले आया था ? वह यही तो डाकू था। जैसा कुत्ता हो, वैसा डण्डा न होने पर क्या चलता है ? पुल के काम में भेज दो, मुहल्ला शान्त हो जाएगा।"

शम्भू ने माँ की सौगन्ध खाई कि कल जैसे भी हो, छोकरे को गाँव से निकालकर ही वह पानी पीएगा।

गङ्गामणि ने इस सम्बन्ध में कोई बात नहीं कही, हाथ की लकड़ी फेंककर चुपचाप घर लौट गई।

पति, भाई अभी तक भूखे हैं। अपराह्न के समय वह विषण्-मुख से रसोईघर में दुबारा बैठकर उन्हीं के भोजन की तय्यारी कर कर रही थी, गयाराम ने ताकझाँक कर निःशब्द पाँवों से प्रवेश किया। घर में और किसी को न देखकर, उसने साहस में भरकर एकदम पीछे आकर आवाज दी, "ताई !"

ताई चौंक उठी, परन्तु बात नहीं की। गयाराम ने समीप ही

क्लान्त भाव से धम् से बैठते हुए कहा—"अच्छा जो है वही दे मुझे बड़ी भूख लग रही है।"

खाने की बात से गङ्गाभरिण का शान्त क्रोध पलभर में प्रज्ज्वलित हो उठा। वह उसके मुँह की ओर बिना देखे ही क्रुद्ध होकर बोल उठी, "बेहया! जलमुँहा। फिर मेरे पास आकर कहता है भूखा हूँ? दूर हो यहाँ से।"

गया ने कहा—"दूर हो जाऊँ तेरे कहने से?"

ताई धमकाती हुई बोली—"हरामजादा, पाजी, मैं फिर दूँगी तुझे खाने को?"

गया बोला—"तू नहीं देगी तो कौन देगा? क्यों तूने चूहे को दोष लगाकर झूठी बात कही? क्यों अच्छी तरह नहीं बोली—'बेटा, इसीसे खाले, आज और कुछ नहीं है!' तब तो मुझे क्रोध नहीं आता। दे न खाने को जल्दी राक्षसी, मेरा पेट जला जा रहा है।"

ताई क्षणभर चुप रहकर, मन-ही-मन कुछ नरम होती हुई बोली—"पेट जल रहा है तो अपनी सौतेली माँ के पास जा।"

विमाता के नाम से गया की आँखें पलभर में ही जल उठीं। बोला—"उस अभागी का क्या मैं फिर मुँह देखूंगा? केवल घर में अपनी छीप (मछली पकड़ने का काँटा) लेने गया था, बोली—'दूर! दूर! इस बार जेल का भात खाने को जा।' मैं बोला—'तेरा भात खाने के लिए मैं नहीं आया हूँ—मैं ताई के पास जा रहा हूँ।' जल मुँही कम शैतान है! इसी की ही वजह से तो पिताजी ने तेरे हाथ से बाँस के पत्ते छीन लिए थे।" यह कहकर उसने जोर से धरती पर पाँव मारते हुए कहा—"तू राक्षसी स्वयं ही पत्ता लेने को जाकर अपमानित हुई? मुझसे क्यों नहीं कहा? इस बाँस की पूरी झाड़ी में यदि मैं आग न लगा दूँ तो मेरा नाम गया नहीं, देख लेना। अभागी

मुझसे क्या बोली, जानती है ताई? बोली, 'तेरी ताई ने थाने में खबर भेजी है, दारोगा आकर बाँध ले जाएगा और तुझे जेल में भेजेगा।' सुनी अभागी की बात !"

गंगामणि ने कहा, "तेरे ताऊ पाँचू को साथ लेकर थाने तो गए ही हैं। तू मेरे ऊपर हाथ उठाता है, तेरी इतनी बड़ी हिम्मत ?"

पाँचू मामा को गया बिलकुल नहीं देख सकता था। वह इसमें भी शामिल हुआ है, सुन कर वह जलता हुआ बोला, "क्यों तू गुस्से के समय मुझे रोकने गई थी ?"

गङ्गामणि ने कहा—"इसी से मुझे मारेगा ? अब जा, हवालात में बन्द रहना जाकर।"

गया अँगूठा दिखाते हुए बोला—"ई...तू मुझे हवालात में भेजेगी ? भेज न, एक बार मजा देख न ! तू स्वयं ही रो-रोकर मर जाएगी, मेरा क्या होगा।"

गङ्गामणि ने कहा—"मेरी बला जाती है रोने को। जा, मेरे सामने से चला जा, कहती हूँ, दुश्मन कहीं का।"

गया चिल्लाकर बोला, "तू पहले खाने को दे, तभी तो जाऊँगा। कब के सबेरे उठ कर दो मुट्ठी लाईकी ही तो खाई हैं, बोल तो ? मुझे भूख नहीं लगती ?"

गङ्गामणि कुछ कहने जा रही थी, इसी समय शिबू पाँचू के साथ थाने से लौट आया एवं गया पर दृष्टि पड़ते ही जलभुन कर चिल्लाने लगा, "हरामजादा, पाजी, फिर मेरे घर में घुस आया ! भाग, भाग, कहे देता हूँ। पाँचू पकड़ तो सुअर को !"

बिजली की भाँति गयाराम दरवाजे से निकल गया। चिल्लाता हुआ कह गया—"पाँचू साले की एक टाँग न तोड़ दूँ तो मेरा नाम गयाराम नहीं !"

निमिष भर में यह घटना घट गई। गङ्गामणि एक बात कहने का अवसर भी न पा सकी।

क्षुब्ध शिबू ने स्त्री से कहा, "तेरी शह पाकर ही वह ऐसा हो गया है। फिर कभी हरामजादे को घर में घुसने दिया तो तुझे बड़ी भारी सौगन्ध है।"

पाँचू बोला—"दीदी, तुम लोगों का क्या, मेरा ही सर्वनाश है। कभी रात-बिरात में छिप कर मेरी टाँग पर लट्ठ मार देगा, ऐसा दिखाई देता है।"

शिबू ने कहा—"कल सबेरे ही यदि पुलिस के सिपाही से उसके हाथ में हथकड़ी न पहनवा दूँ तो मेरा..." इत्यादि-इत्यादि।

गङ्गामणि जड़वत् बैठी रही—एक बात भी उसके मुँह से बाहर नहीं निकली। भयभीत पाँचकौड़ी उस रात को फिर घर नहीं गया। वहीं पर सो गया।

दूसरे दिन दस बजे के समय दो कोस की दूरी से दारोगाजी उपयुक्त दक्षिणादि ग्रहण कर पालकी पर चढ़े हुए सिपाही और चौकीदारों के साथ मौके पर तहकीकात करने के लिए आ पहुँचे। अनधिकार प्रवेश, चीज-वस्त का नुकसान, जलाने की लकड़ी से स्त्री के शरीर पर चोट करना आदि बड़ी-बड़ी धाराओं के अभियोग—सारे गाँव में एक हलचल मच गई।

प्रधान मुलजिम गयाराम था—उसे हिकमत के साथ पकड़ लाकर हाजिर करते ही, वह सिपाही, चौकीदार आदि को देख कर डर के मारे रोते हुए बोला—"मुझे कोई देख नहीं सकता, इसी से सब लोग मुझे हवालात में भेजना चाहते हैं।" दारोगा वृद्ध मनुष्य था। उस ने मुलजिम की आयु और रोने को देख कर दयार्द्र चित्त से पूछा—"तुम्हें कोई प्यार नहीं करता, गयाराम ?"

गया ने कहा, "मुझे केवल मेरी ताई प्यार करती है, और कोई नहीं।"

दारोगा ने पूछा—"तब ताई को मारा क्यों था ?"

गया बोला—"नहीं, नहीं मारा।" किवाड़ों की आड़ में गङ्गा-मणि खड़ी थी, उस ओर देखता हुआ बोला, "तुझे मैंने कब मारा था ताई ?"

पाँचू पास ही बैठा था, वह एक कटाक्ष करता हुआ बोला—"दीदी, हुजूर पूछ रहे हैं, सच्ची बात कहो। कल दोपहर के समय मकान में घुसकर लकड़ी से तुझे नहीं मारा था ? धर्मावतार के निकट झूठी बात मत कहना।"

गङ्गामणि ने अस्फुट स्वर में जो कुछ भी कहा, पाँचू उसी को स्पष्ट करता हुआ बोला—"हाँ हुजूर, मेरी दीदी कहती है, उसने मारा था।"

गया अग्नि के समान जलता हुआ चिल्ला उठा, "देख पाँचू, तेरा पाँव मैं न तोड़ डालूँ तो..." क्रोध से उसकी बात पूरी न हो सकी, रो पड़ा।

पाँचू उत्तेजित होकर कह उठा, "देखा हुजूर ! देखा ! हुजूर के सामने ही कहता है पाँव तोड़ दूँगा, पीछे यह खून कर सकता है। इसे बाँध लेने का हुकुम कीजिए।"

दारोगा केवल जरा-सा हँस दिए। गया आँखें पोंछता-पोंछता बोला—"मेरी माँ नहीं है इसी से ! अन्यथा..." इसबार भी उसकी बात पूरी न हो सकी। जिस माँ को उसे याद भी नहीं, याद करने की कोई जरूरत भी नहीं, आज विपत्ति के दिन अचानक उसी को पुकारता हुआ वह झरझर आँसू बहाता हुआ रोने लगा।

दूसरे मुलजिम शिबू के विरुद्ध किसी बात का प्रमाण नहीं

मिला। दारोगाजी अदालत में नालिश करने का हुकुम देकर रिपोर्ट लिख लेकर चले गए। पाँचू ने मामला चलाने और बाक़ायदा उसकी तदबीर करने का उत्तरदायित्व ले लिया एवं अपनी बहिन के प्रति किए गए भारी अत्याचार के लिए गया को जो कड़ी सज़ा मिलेगी, उसे चारों ओर कहता हुआ घूमने लगा।

परन्तु गया बिल्कुल लापता होगया। मुहल्ले-पड़ोस के लोग शिबू के इस आचरण की निन्दा करने लगे। शिबू उनसे लड़ता फिरने लगा, परन्तु शिबू की स्त्री एकदम चुप रही। उस दिन गया की दूर के रिश्ते की एक मौसी खबर पाकर शिबू के घर जाकर उसकी स्त्री से जो मन में आया वह कह कर गाली-गलौज कर गई, परन्तु गङ्गा-मणि एकदम चुप बनी रही। शिबू ने पड़ोस के आदमी से यह बात सुनकर क्रुद्ध होते हुए स्त्री से कहा—"तू चुप बैठी रही ? एक बात भी नहीं कही ?"

शिबू की स्त्री ने कहा—"नहीं।"

शिबू बोला—"मैं घर में होता तो उस औरत को झाड़ू मारकर निकाल देता।"

उसकी स्त्री ने कहा—"तब तो आज से घर में ही बैठे रहो, और कहीं मत फिरना।" कह कर अपने काम से चली गई।

उस दिन दोपहर को शिबू घर पर नहीं था। शम्भू आकर बाँस की झाड़ी में से कुछ बाँस काट ले गया; आवाज सुन कर शिबू की स्त्री ने बाहर आकर अपनी आँखों से सब-कुछ देखा, चुपचाप घर लौट गई। दो दिन बाद खबर सुनकर शिबू क़ूदने लगा। स्त्री से आकर कहा—"तेरे क्या कान फूट गए हैं ? घर के पास से ही वह बाँस काट ले गया और तुझे आहट भी नहीं मिली ?"

उसकी स्त्री बोली—'आहट क्यों नहीं मिली, मैंने आँखों से वह सब देखा था।"

शिबू क्रुद्ध होकर बोला—"तो भी तूने मुझे नहीं बताया ?"

गङ्गामणि बोली—"बताती फिर क्या ? बाँस की झाँड़ी क्या केवल तुम्हारी ही है। देवर का उसमें हिस्सा नहीं हैं ?"

शिबू ने आश्चर्य से हतबुद्धि होते हुए केवल यह कहा—"तेरा क्या माथा खराब हो गया है ?"

उस दिन सन्ध्या के बाद पाँचू अदालत से लौट कर शान्तभाव से धम् से बैठ गया। शिबू गाय के लिए कुट्टी कूट रहा था, अँधेरे में उसके मुँह और आँखों की मुस्कराहट पर उसकी दृष्टि नहीं पड़ी। भयभीत होकर पूछा—"क्या हुआ ?"

पाँचू गंभीरतापूर्वक तनिक हँसता हुआ बोला—"पाँचू के रहने पर जो होता, वही हुआ ! वारण्ट निकलवा कर तब आया हूँ। इस समय वह कहाँ है, इसका पता लगाना ही होगा।"

शिबू को एक तरह की भयानक जिद चढ़ गई थी। उसने कहा—"चाहे जितना खर्च हो, छोकरे को पकड़वाना ही है। उसे जेल भिजवा कर ही मैं और काम करूँगा।" तदुपरान्त दोनों में अनेकों प्रकार के परामर्श चलने लगे; परन्तु रात के ग्यारह बज गए, भीतर से उसकी बुलाहट नहीं आई यह देखकर शिबू ने चकित होकर रसोई घर में जाकर देखा, घर में अँधेरा है।

सोने के कमरे में जाकर देखा, स्त्री धरती पर चटाई बिछाए सो रही है। क्रुद्ध और आश्चर्यचकित होकर पूछा—"खाना हो गया तो मुझे बुलाया क्यों नहीं ?"

गङ्गामणि धीरे से करवट लेकर बोली—'किसने बनाया जो खाना बन गया ?"

शिबू ने टोकते हुए पूछा—"अब तक नहीं बनाया ?"

गङ्गामणि ने कहा—"नहीं ! मेरा शरीर ठीक नहीं है; आज

मैं नहीं बना सकूँगी।" जोर की भूख से शिबू की नाड़ी जल रही थी, वह और नहीं सह सका। सोती हुई स्त्री की पीठ पर एक लात मारते हुए बोला—"आजकल रोज बीमार, रोज बीमार, नहीं कर सकती? नहीं कर सकती तो निकल जा मेरे घर से।"

गङ्गामणि ने बात भी नहीं की, उठकर भी नहीं बैठी। जैसी सो रही थी, वैसी ही पड़ी रही। उस रात साले-बहनोई किसी का भोजन नहीं हुआ।

सबेरे देखा गया, गङ्गामणि घर में नहीं है। इधर-उधर कुछ देर ढूँढ़-ढकोर करने के बाद पाँचू ने कहा—"दीदी अवश्य ही हमारे घर चली गई है।"

स्त्री के इस प्रकार आकस्मिक परिवर्तन का कारण शिबू मन-ही-मन समझ रहा था, इसी से उसकी विरक्ति भी जैसे उत्तरोत्तर बढ़ रही थी; नालिश-मुकद्दमे की ओर झुकाव भी वैसे ही कम होता जा रहा था। उसने सिर्फ यह कहा—"चूल्हे में जाए, मुझे ढूँढ़ने की जरूरत नहीं है।"

शाम को खबर मिली, गङ्गामणि बाप के घर नहीं गई। पाँचू ने भरोसा बँधाते हुए कहा "तब तो वह अवश्य ही बुआ के घर चली गई है।"

उसकी एक धनी बुआ पाँच-छैः कोस दूर एक गाँव में रहती थीं। पूजा-पर्व के उपलक्ष में वे कभी-कभी गङ्गामणि को लिवा ले जाती थीं। शिबू स्त्री को बहुत प्यार करता था। उसने मुँह से तो कहा—"जहाँ खुशी हो जाने दो! मरने दो!" परन्तु भीतर-ही-भीतर अनुतप्त एवं उत्कण्ठित हो उठा। तो भी क्रोध के कारण पाँच-छैः दिन बीत गए। इधर काम-काज और गाय-बैलों के मारे उसकी गृहस्थी का काम एक तरह से रुक गया। एक दिन भी कटना कठिन हो गया।

सातवें दिन वह स्वयं तो नहीं गया, परन्तु अपने पौरुष को मिटा कर उसने बुआ के घर बैलगाड़ी भेज दी।

दूसरे दिन सूनी गाड़ी लौट आई, समाचार दिया वहाँ कोई नहीं है। शिबू माथे पर हाथ रखकर बैठ गया।

सारे दिन स्नान-भोजन नहीं हुआ, मुर्दे की भाँति एक तख्त के ऊपर पड़ा रहा। पाँचू ने अत्यन्त उत्तेजित की भाँति घर में प्रवेश करते हुए कहा—"सामन्तजी पता मिल गया!"

शिबू ने झटपट उठ कर बैठते हुए कहा—"कहाँ है? किसने खबर दी? गाड़ी ले चलो न, अभी दोनों जने चलें।"

पाँचू बोला—"दीदी की बात नहीं, गया का पता मिल गया है।"

शिबू फिर लेट गया, कोई बात नहीं कही।

तब पाँचू बहुत प्रकार से समझाने लगा कि इस सुयोग को किसी भी तरह छोड़ना उचित नहीं है। दीदी तो एक दिन आएगी ही, परन्तु तब फिर इस बेटा की बाग नहीं मिलेगी।

शिबू ने उदास कण्ठ से कहा—"अभी ठहरो पाँचू! पहले वह लौट आए, उसके बाद...।"

पाँचू ने टोकते हुए कहा—"उसके बाद फिर क्या होगा, सामंत जी? अपितु दीदी के लौटकर आने-न-आने से पहले ही काम समाप्त कर देना चाहिए! वह आ पड़ी तो फिर होगा ही नहीं।"

शिबू राजी हो गया, परन्तु अपने खाली घर की ओर देखकर दूसरे से बदला लेने का जोर उसे स्वयं में ढूँढ़े भी नहीं मिल रहा था। अब पाँचू का जोर उधार लेकर ही उसका काम चल रहा था।

दूसरे दिन रात रहते ही वे दोनों अदालत के पियादे आदि को

लेकर बाहर निकल पड़े। रास्ते में पाँचू ने बताया—"बड़े दुःख की खबर मिली है कि शम्भू ने उसे पाँचला के सरकारी पुल के काम में नाम बदल कर भर्ती कर दिया है। उसी जगह उसे गिरफ्तार करना होगा।"

शिबू बराबर चुप बना रहा था, इस बार भी चुप बना रहा।

उन्होंने जब गाँव में प्रवेश किया, तब दोपहर हो चुका था। गाँव के एक ओर बहुत बड़ा मैदान था, वह लोग-बाग, लोहा-लक्कड़, कल-कारखानों से परिपूर्ण था; सब जगह छोटे-छोटे घर बने हुए थे, जिनमें मज़दूर रहा करते थे। बहुत-कुछ पूछताछ के बाद एक आदमी ने कहा—"जो लड़का साहब के बँगले में लिखा पढ़ी का काम करता है, वही न ? उसका घर यह रहा।" कह कर एक छोटी-सी झौंपड़ी दिखा दी। वे लोग मौन साधे, पाँव दबाए, बड़ी मुश्किल से उसके पास जाकर खड़े हो गए। भीतर गयाराम का कण्ठस्वर सुनाई दिया। पांचू के प्रसन्नता में भर कर पेयादा एवं शिबू को लेकर बीरदर्प से अचानक झौंपड़ी के खुले हुए दरवाजे को रोक कर खड़े होते ही उसका सम्पूर्ण मुख विस्मय, क्षोभ और निराशा से काला हो गया। उसकी दीदी भात परोस कर एक हाथ में पंखा लिए हवा कर रही थी एवं गयाराम भोजन करने बैठा हुआ था।

शिबू को देखते ही गङ्गामणि ने माथे पर आँचल को खींचते हुए केवल यह कहा—"तुम लोग जरा ठण्डे होकर नदी में नहा आओ, मैं तबतक और एक हाँडी भात चढ़ाए देती हूँ।"

देवघर की स्मृति

डाक्टर के कहने पर वायु-परिवर्त्तन के निमित्त मैं देवघर आया था। आते समय रविबाबू की वह कविता बार-बार याद आई थी, जिसका अर्थ यह है कि 'दवा और डाक्टर, दोनों ने मिलकर जब शरीर में हड्डियाँ-ही-हड्डियाँ रहने दीं और वे भी जर्जर हो गईं, तब डाक्टर ने आज्ञा दी कि वायु-परिवर्त्तन के लिए किसी अच्छी जगह जाओ। तब हुआ कि व्याधि से बढ़कर आधि हो गई।'

वायु-परिवर्त्तन से साधारणतः कितना लाभ होता है, इसे लोग जानते हैं, फिर भी वायु-परिवर्त्तन के लिए आते ही हैं। मैं भी आया। चहारदीवारी से घिरे हुए बाग़ के भीतर बने हुए एक बड़े से कमरे में रहता हूँ। रात में तीन बजे के समीप ही से एक आदमी फटे जझर जैसे बेसुरे-कण्ठ से भजन गाना आरम्भ कर देता है। मेरी निद्रा भङ्ग हो जाती है। दरवाज़ा खोलकर बरामदे में आ बैठता हूँ। धीरे-धीरे रात समाप्त होने लगती है—चिड़ियों का आना-जाना एवं चहचहाना आरम्भ हो जाता है।

मैं देखता था, उन चिड़ियों में सबसे पहले बहुत सबेरे ही कोयल उठती है। अँधेरा दूर होने भी नहीं पाता, झुटपुटे में ही उन चिड़ियों का गाना आरम्भ हो जाता है। इसके पश्चात् एक-एक करके बुलबुल, श्यामा, सालिख और टुनटुनी नामक चिड़ियाँ आती हैं। समीप के घर में जो आम का वृक्ष था, उसमें, मेरे घर के बकुल-कुञ्ज में, सड़क के किनारे वाले पीपल की चोटी पर, ये सब चिड़ियाँ जमा होती हैं। उन सबको मैं आँखों से नहीं देख पाता था, परन्तु प्रतिदिन बोली सुनते-सुनते ऐसा अभ्यास हो गया जैसे उनमें से प्रत्येक चिड़िया मेरी पहिचानी हुई है।

पीले रङ्ग की 'बन-बहू' नामक चिड़िया का एक जोड़ा थोड़ी देर करके आता था। दीवाल के सहारे 'यूकलिप्टस' नामक विलायती वृक्ष की सबसे ऊँची डाल पर बैठकर यह जोड़ा नित्य बोलता और अपनी हाजिरी दे जाता था। अचानक ऐसा हुआ कि न जाने क्यों, यह जोड़ा दो दिन तक नहीं आया। यह देखकर मैं व्यग्र हो उठा। मन में सोचने लगा—किसी ने उन्हें पकड़ तो नहीं लिया? इस ओर बहेलियों व चिड़ीमारों की कमी नहीं है। चिड़ियों को पकड़कर बाहर भेजना ही इन चिड़ीमारों की जीविका है। परन्तु तीन दिन के बाद चौथे दिन फिर वह जोड़ा आया। उसे देखकर ऐसा लगा, जैसे वास्तव में कोई बड़ी चिन्ता दूर हो गई हो।

इस प्रकार सबेरे का समय कटता है, तीसरे पहर फाटक के बाहर सड़क के किनारे आ बैठता हूँ। घूमने फिरने की शक्ति मुझमें नहीं है, जिनमें है उनकी ओर टकटकी लगाए देखता रहता हूँ। देखता था, मध्यवित्त अथवा मध्यवर्ग के गृहस्थों के घरों के जो रोगी यहाँ हैं उनमें स्त्रियों की संख्या ही अधिक है।

पहले कुछ कम आयु की लड़कियाँ दिखाई देती थीं, जिनके पाँव फूले हुए थे। मैं समझ गया, उन्हें 'बेरी-बेरी' नामक रोग है। पैरों की सूजन छिपाने के लिए, इस कुरूपता की लज्जा को ढकने के लिए वे

बेचारी बड़े-बड़े यत्न करती थीं। वे मोजा पहिनने के दिन नहीं थे, गर्मी पड़ने लगी थी, तब भी मैं देखता उनमें से कोई-कोई खूब कसे हुए मोजे पहने रहती थीं, किसी को देखता, उसकी साड़ी इतनी नीची है कि धरती पर लोट रही है। यद्यपि इससे चलने में बाधा पड़ती थी, फिर भी वे अपने पाँवों के ऐब को कोतूहली लोगों की दृष्टि से छिपा रखना चाहती हैं।

और मुझे सबसे अधिक दुःख होता था, एक दरिद्र-घर की स्त्री को देखकर। वह अकेली ही जाती थी। उसके साथ न कोई आत्मीय स्वजन होता और न कोई सखी-सहेली ही। केवल तीन छोटे-छोटे लड़की-लड़के रहते। आयु उसकी शायद, चौबीस-पच्चीस वर्ष की होगी, परन्तु शरीर जैसा दुर्बल और टूटा हुआ था, मुँह भी वैसा ही पीला-पीला था, उसमें जैसे एक बूँद भी रक्त नहीं था। अपने शरीर का बोझ सँभालकर चलने की शक्ति भी उसमें नहीं थी, फिर भी वह सबसे छोटे बच्चे को अपनी गोद में लिए रहती थी। वह बच्चा अपने पाँवों से नहीं चल सकता था, परन्तु शायद उसे वह घर में भी छोड़ कर नहीं आ सकती थी। उस स्त्री की दृष्टि न जाने कैसी दीन और थकी हुई थी। लगता था, मुझे देखकर जैसे वह लज्जित हो जाती है। फटे मैले कुर्त्ते और धोती से तीनों बच्चों को किसी प्रकार ढँक-ढँकाकर वह प्रतिदिन इसी मार्ग से जाती थी। सम्भवतः उसने यह सोचा होगा कि अन्य किसी उपाय से—औषधोपचार से जो नहीं हुआ, उसे वह इस संथाल परगने के स्वास्थ्य-वर्द्धक जलवायु में इस अत्यन्त कष्टकर भ्रमण से ही प्राप्त कर लेगी—उसका स्वास्थ्य फिर से ठीक हो जायगा। वह स्वस्थ हो जायगी, रोग से मुक्ति पाकर उसकी शक्ति पुनः लौट आवेगी, वह फिर से अपने बच्चों की, पति की सेवा करके संसार में अपने नारी जीवन को सार्थक बना सकेगी।

मैं बैठा-बैठा अपने मन में सोचा करता, इसके अतिरिक्त उसकी और क्या कामना हो सकती है? वह भारतीय नारी है, उसे इससे

अधिक कुछ प्राप्त करने की बात किसने कब सिखाई होगी ? मन-ही-मन उसे आशीर्वाद दिया करता कि वह आरोग्य होकर, अपने घर लौटकर जा सके—जिन तीन बच्चों ने उसकी सम्पूर्ण जीवनीय-शक्ति चूस ली है, उन्हीं को पाल-पोसकर मनुष्य बनाने का अवसर उसे प्राप्त हो। वह किसकी पुत्री है, किसकी स्त्री है, उसका घर कहाँ है—यह सब मैं नहीं जानता। सम्पूर्ण भारत की असंख्य नारियों की प्रतीक बनकर वह जैसे मेरे मन के भीतर एक अमिट गहरी लकीर सी खींच गई, जो सहज ही मिटने वाली नहीं है।

यहाँ मेरे साथ कलकत्ते का एक नवयुवक मित्र आया हुआ था। उसकी सेवा निस्वार्थ थी। कलकत्ते में जब मैं अधिक बीमार था, तब उसने जिस प्रकार मन लगा कर मेरी सेवा की थी, वैसी ही यहाँ भी करते हुए पाया। कभी-कभी वह कहता, 'चलो दादा, आज थोड़ा टहल आवें।' मैं कहता, 'तुम जाओ भाई, मैं यहीं बैठकर वह काम पूरा कर लूँगा।' उस समय वह असहिष्णु होकर कहता, 'आपसे भी अधिक बूढ़े कितने ही लोग यहाँ टहलते-फिरते हैं। थोड़ा घूमिएगा-फिरिएगा नहीं, तो फिर भूख कैसे लगेगी ?' इस पर मैं उत्तर देता, 'भूख कम लगने से भी काम चल जाएगा, परंतु व्यर्थ ही दर-दर मारे-मारे फिरना मुझसे न हो सकेगा।'

वह नाराज होकर अकेला ही घूमने चला जाता। परंतु जाते समय मुझे सावधान कर देता, 'देखिए, अँधेरे में घर मत लौटिएगा। नौकर को पुकार कर लालटेन लाने के लिए कह दीजिएगा। इधर करैंत सर्प (विषधर नाग) कुछ अधिक होते हैं वैसे वे किसी से बोलते नहीं, परंतु अपने ऊपर किसी का पाँव पड़ जाना उन्हें पसन्द नहीं होता।'

मेरा मित्र उस दिन घूमने गया था। सन्ध्या होने में अभी विलम्ब था। मैंने देखा, कई वृद्ध मनुष्य भूख उत्पन्न करने के कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए शक्ति भर तेज गति से अपने डेरों को लौट रहे

थे। सम्भवतः वे वात-व्याधि से पीड़ित थे, इसीलिए उन्हें सन्ध्या होने से पहले ही घर के भीतर पहुँचने की आवश्यकता थी।

उनकी चाल देख कर मुझे भरोसा हुआ कि मैं भी कुछ दूर तक टहल सकता हूँ। सोचा, चलूँ, थोड़ी दूर तक मैं भी घूम आऊँ। उस दिन मार्ग में बहुत दूर तक घूमा। अँधेरा हो आया। सोचा मैं अकेला हूँ, परंतु अचानक पीछे मुड़ कर देखा, मेरे पीछे एक कुत्ता चला आ रहा था।

मैंने उससे कहा, "क्योंरे, चलेगा मेरे साथ? अँधेरी राह में घर तक पहुँचा देगा?"

वह कुछ दूर खड़ा होकर पूँछ हिलाने लगा।

मैं समझ गया, वह तैयार है। बोला—"तो फिर आ मेरे साथ।"

सड़क के किनारे एक लालटेन की रोशनी में देखा, कुत्ता सयाना था। किसी रोग के कारण उसकी पीठ के रोंएँ झड़ गए थे। तनिक लंगड़ा कर भी चलता था। परंतु जब वह जवान होगा, तब उसमें बड़ी शक्ति रही होगी, यह स्पष्ट जान पड़ा। उससे भाँति-भाँति के अनेकों प्रश्न करता हुआ मैं अपने डेरे के सामने आ पहुँचा। फाटक खोल कर मैंने उसे भीतर बुलाया। कहा—"आ, भीतर आ। आज तू मेरा अतिथि है।"

परंतु वह बाहर खड़ा रह कर ही पूँछ हिलाता रहा, किसी भी प्रकार भीतर घुसने की हिम्मत नहीं कर सका।

इतने में नौकर लालटेन लेकर आ गया। उसने फाटक बन्द कर देना चाहा, परंतु मैंने कहा—"बन्द मत करो, खुला ही रहने दो। यदि यह कुत्ता भीतर आए तो इसे खाने को कुछ दे देना।"

प्रायः एक घण्टे बाद मैंने खबर ली तो पता चला कि वह नहीं

आया, अन्यत्र चला गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल बाहर आते ही मैंने देखा, मेरा कल का अतिथि फाटक के बाहर खड़ा है। मैंने कहा—"कल तुझे खाने का न्योता दिया था, तू आया क्यों नहीं ?"

इसके उत्तर में वह मुँह ताकता हुआ उसी प्रकार पूँछ हिलाने लगा। मैंने कहा—"आज तू खाकर जाना, बिना खाए मत चले जाना ! समझा ?"

इसके उत्तर में उसने जोर-जोर से पूँछ हिलाई। सम्भवतः उसका तात्पर्य यह था कि सच कह रहे हो न ?

रात को नौकर ने आकर बताया—"वही कुत्ता आज बाहर के बरामदे के नीचे आँगन में बैठा है। रसोइया ब्राह्मण को बुला कर मैंने कह दिया," वह कुत्ता मेरा अतिथि है; उसे भर पेट खाने को देना !"

दूसरे दिन खबर मिली, मेरा अतिथि फिर नहीं गया। आतिथ्य सत्कार की मर्यादा के विरुद्ध वह आराम से निश्चिन्त होकर डटा हुआ है। मैंने कहा—"खैर होगा, तुम उसे खाने के लिए दे देना।"

मैं जानता था, प्रतिदिन बहुत-सी भोजन-सामग्री फेंक दी जाती है, अतः कुत्ते को खिलाने में किसी को आपत्ति न होगी। परंतु आपत्ति थी, और बहुत अधिक आपत्ति थी। हमारी रसोई की बचत का एक बड़ा भाग इस बाग के माली की स्त्री के पेट में जाता था, परंतु मुझे यह ज्ञात नहीं था। मालिन नवयौवना थी, देखने-सुनने में भी अच्छी थी। साथ ही खाने में उसे कोई विशेष विचार भी नहीं था। नौकरों को उसी के साथ पूरी सहानुभूति थी। अतः मेरे अतिथि को प्रति दिन उपवास करना पड़ता था।

तीसरे पहर मैं सड़क के किनारे जा बैठा। देखा, मेरा अतिथि पहले से ही वहाँ आकर पृथ्वी पर बैठा हुआ है। प्रतिदिन का यही

नियम हो गया। जब मैं टहलने जाता, तब वह मेरे साथ-साथ जाता था। मैं पूछता—"हाँ रे अतिथि, आज माँस कैसा पका था? हड्डी चबाने में कैसा स्वाद आया?"

वह पूँछ हिलाकर उत्तर देता। मैं समझता कि माँस उसे बहुत अच्छा लगा है। मुझे यह नहीं ज्ञात था कि मालिन ने उसे निकाल कर बाहर कर दिया है। वह उसे बाग के भीतर घुसने ही नहीं देती। अतः वह घर के सामने सड़क पर बैठा रहता है। मेरे नौकर भी इस षडयन्त्र में सम्मिलित थे।

अचानक मेरी तबियत खराब होगई, दो दिन तक मैं ऊपर से नीचे उतर कर भी नहीं आ सका, दोपहर के समय ऊपर के कमरे में बिछौने पर पड़े-पड़े अखबार पढ़ कर समाप्त किया था तथा खुली हुई खिड़की से बाहर धूप से तपे हुए नीले आकाश की ओर अनमने भाव से देखता हुआ मनमें सोच रहा था, जो लोग कांग्रेस के पण्डे अथवा महन्त हैं, उनकी मन्त्री बन जाने की कैसी उत्कट आकांक्षा है, कैसी पद-लिप्सा है, अथवा, उसे निस्पृहता के आवरण में छिपाने के लिए ये लोग कैसे-कैसे कौशल से काम लेते हैं। जिन्होंने कानून बना दिया, एक भी नहीं सुनी, उन्हीं के साथ कानून की व्याख्या को लेकर कैसी छीना-झपटी की लड़ाई ठाने हुए हैं! इस बात को निस्सन्देह प्रमाणित कर देना चाहते हैं ये कांग्रेसी कि कानून के निर्माताओं का इरादा अच्छा नहीं है! विडम्बना और किसे कहते हैं?

अचानक खुले हुए दरवाजे से कमरे के फर्श पर कुत्ते की परछाईं दिखाई दी। मुँह उठा कर देखा, अतिथि सामने खड़ा हुआ पूँछ हिला रहा है। दोपहर के समय सभी नौकर सो रहे थे, उनकी कोठरियाँ बन्द थीं। इसी सुयोग को पाकर वह छिपता हुआ एकदम मेरे कमरे के सामने आ उपस्थित हुआ है। मैंने सोचा—"दो दिन से मुझे नहीं देखा, शायद इसीलिए देखने आया है।"

मैंने पुकारा—"आओ अतिथि, भीतर आओ।"

वह नहीं आया, वहीं खड़ा हुआ पूँछ हिलाने लगा।

मैंने पूछा—"खा चुका रे? आज क्या खाया?"

अचानक जान पड़ा, उसकी दोनों आँखें जैसे गीली हो रही हैं, वह जैसे एकान्त में मेरे समक्ष कुछ नालिश करना चाहता है। मैंने नौकरों को पुकारा। उनके दरवाजा खोलने का शब्द होते ही अतिथि भाग खड़ा हुआ।

मैंने नौकर से पूछा—"हाँ रे, आज कुत्ते को कुछ खाने के लिए दिया है?"

वह बोला—"जी नहीं। मालिन ने उसे मार कर भगा दिया था।"

मैंने कहा—"आज तो खाने का बहुत-सा सामान बचा था, वह सब क्या हुआ?"

नौकर बोला—"मालिन सब उठा ले गई।"

हङ्गामा सुनकर मेरे मित्र की नींद खुल गई। वह आँखें मलता-मलता मेरे कमरे के भीतर आया और तनिक मुस्कुराकर बोला—"दादा की बातें निराली होती हैं! आदमियों को तो खाने को नहीं मिलता और आप सड़क के कुत्ते को बुलाकर खिलाते हैं! खूब!"

मेरा मित्र समझता है, इससे बढ़कर अकाट्य युक्ति और कोई नहीं हो सकती। मनुष्य को न देकर, कुत्ते को देना—यह अन्धेर ही तो है।

सुनकर मैं चुप हो गया। संसार में किसका दावा किस के ऊपर पहुँचता है, यह मैं इन लोगों को किस तरह समझाता।

खैर, वह चाहे जो हो, मेरे अतिथि को फिर बुला कर लाया गया। फिर उसने बरामदे के नीचे के आँगन की धूलि में अत्यन्त

निश्चिन्त मन से अपने लिए स्थान बना लिया। अब मालिन से उसका भय दूर हो गया। दिन ढल गया। तीसरे पहर मैंने बरामदे से देखा, अतिथि मेरी ही ओर देखता हुआ चलने के लिए तैयार खड़ा था। मेरे टहलने का समय जो हो गया था!

मेरा शरीर सशक्त नहीं हुआ। आरोग्यलाभ न होने पर भी देवघर से विदा होने का दिन आ गया। फिर भी भाँति-भाँति के बहाने बना कर दो दिन तक और रुका रहा।

आज सबेरे से ही सामान बँधना आरम्भ हो गया—दोपहर की गाड़ी से जाना है। फाटक के बाहर गाड़ियाँ आ खड़ी हुईं, उन पर सामान लादा जाने लगा।

अतिथि बहुत व्यस्त था, कुलियों के साथ बराबर दौड़ कर भीतर-बाहर आ-जा कर चौकसी करने लगा, जैसे वह यह देख भाल कर रहा हो कि कहीं कुछ खो न जाए, रह न जाए। सब से अधिक उत्साह उसी में दिखाई पड़ रहा था।

एक-एक करके गाड़ियाँ स्टेशन को चल दीं। मेरी गाड़ी भी चलने लगी। स्टेशन अधिक दूर न था। वहाँ पहुँचकर उतरने लगा तो देखा, मेरा अतिथि सामने ही खड़ा है।

मैंने कहा—"क्यों रे, तू यहाँ भी आ गया?"

उसने पूँछ हिलाकर इस प्रश्न का उत्तर दिया, न जाने उसका क्या अर्थ था?

टिकट खरीदे गए। माल-असबाब की तौलनाप होगई।

मित्रने आकर समाचार दिया—"ट्रेन छूटने में बस दो-एक मिनट की ही देर है। साथ में जो लोग सवार कराने आए थे, उन सब को मैंने बख्शीश-इनाम दिया। कुछ नहीं पाया तो केवल मेरे अतिथि ने ही।

गर्म हवा में धूल उड़कर सामने पर्दे की भाँति छा गई। जाने से पूर्व उसी पर्दे के भीतर से मैंने अस्पष्ट देखा—स्टेशन के फाटक के बाहर मेरा अतिथि खड़ा हुआ एकटक मेरी ओर देख रहा है। ट्रेन सीटी देकर चल दी।

घर लौटने का आग्रह अथवा उत्साह मुझे अपने मन के भीतर कहीं ढूँढ़े भी नहीं मिला। केवल यही विचार आने लगा, मेरा अतिथि आज लौटकर देखेगा कि उस घर का लोहे का फाटक बन्द है। उसके भीतर जाने का कोई उपाय नहीं है। संभवतः मार्ग में खड़े होकर वह दो-तीन दिन तक मेरी राह देखेगा, सम्भवतः दोपहरी के सन्नाटे में किसी समय फाटक को खुला पाकर चुपचाप छिपकर ऊपर चढ़ जाएगा और मेरे रहने के कमरे को ढूँढ़ेगा। मुझे न पाकर फिर सड़क का कुत्ता सड़क पर ही आश्रय ग्रहण करेगा।

सम्भवतः उससे अधिक तुच्छ जीव उस नगर में अन्य कोई नहीं है, फिर भी यह देवघर में रहने की स्मृति उस कुत्ते को स्मरण करके ही आज मैं लिखकर छोड़े जा रहा हूँ।

बाल्य-स्मृति

१

'अन्न-प्राशन के समय जब मेरा नामकरण संस्कार हुआ, तब मैं ठीक से तय्यार नहीं हो पाया था' यह कह लीजिए; अथवा 'मेरे बाबा का ज्योतिष शास्त्र में विशेष दखल नहीं था, यह कहिए, मैं 'सुकुमार' हूँ। अधिक दिन नहीं, ठीक दो-चार वर्ष में ही बाबा साहब समझ गए कि नाम के साथ मेरा वैसा मेल नहीं खाता। अब बारह-तेरह वर्ष बाद की बात कह रहा हूँ। निश्चित रूप से मेरे आत्म-परिचय की बातें कोई अच्छी तरह नहीं समझ सकेगा--तो भी...

देखिए, गँवई-गाँव में हमारा घर है। वहाँ मैं बचपन से रहता आया हूँ। पिताजी पश्चिम प्रदेश में नौकरी करते थे। मैं वहाँ अधिक नहीं जाता था। दादी के पास देश में ही रहता था। घर में मेरे उपद्रव की सीमा नहीं थी। एक वाक्य में—एक छोटा-सा रावण था मैं। वृद्ध बाबा जब कहते, "तू क्या हो गया है ? किसी की बात नहीं सुनता। इस बार तेरे बाप को चिट्ठी लिखूँगा" तब मैं थोड़ा-सा हँसकर कहता,

"बाबा, वे दिन अब नहीं रहे, बाप के बाप से भी मैं नहीं डरता।" दादी पास रहती तो फिर क्या भय था ? बाबा से वे ही कहतीं, "कैसा जवाब दिया—और छेड़ोगे ?"

बाबा महाशय यदि कभी अधिक नाराज होकर मेरे पिता को पत्र लिखते, मैं तभी उनकी अफीम की डिबिया छिपा देता, बाद में पत्र फाड़ कर न फेंक देने तक डिबिया को बाहर नहीं निकालता। सभी उपद्रवों के भय से, विशेषकर नशे की तलब में खलल पड़ता हुआ देखकर वे मुझसे फिर कुछ नहीं कहते। मैं भी मजे में था।

होने से क्या होता है ? सभी सुखों की एक सीमा निश्चित है। मेरे लिए भी वही हुआ। बाबा के चचेरे भाई गोविन्द बाबू सदैव से इलाहबाद में नौकरी करते थे; अब वे पेन्शन लेकर गाँव में आ गए हैं। उनके पौत्र श्रीयुत रजनीनाथ, बी० ए० पास करके उनके साथ ही लौट आये। मैं उनसे 'सँझले भाई' कहता। पहले मेरे साथ उनकी विशेष जान पहिचान नहीं थी। वे इस ओर कभी आते ही नहीं थे; विशेषकर उनका अलग मकान था; आने पर भी मेरी विशेष खोज-खबर नहीं लेते थे। कभी सामना हो जाने पर "क्यों रे कैसा है ? क्या पढ़ता है ?" यहीं तक।

इस बार वे जमकर आए और गाँव में रहे। काम-ही-काम में मेरी विशेष खोज होने लगी। दो-चार दिन की बातचीत में ही उन्होंने मुझे इस तरह वशीभूत कर लिया कि उन्हें देखते ही मुझे भय लग उठता, मुँह सूख जाता, छाती धड़धड़ाने लगती—जैसे कोई भारी अपराध किया हो, जाने कितना दण्ड मिलेगा। और यथार्थ में तब मैं प्रायः ही दोषी ठहरता। मैं सदैव एक-न-एक बहाना करना चाहता। दो-चार अकर्म और दो-चार बार उपद्रव करना मेरा नित्य कर्म था। डरते रहने पर भी मैं दादा (बड़े भाई) को बहुत प्यार करता। भाई-भाई में इतना प्यार भी हो सकता है, पहले मैं इसे नहीं जानता था। वे

भी मुझे बहुत प्यार करते थे। उनके समीप चाहे जितने अपराध करता, परन्तु वे कुछ नहीं कहते, और कुछ कहते भी तो मैं समझता साँझे भय्या को तो कुछ देर के बाद कुछ याद ही नहीं रहेगा।

यदि चाहते तो वे मेरे चरित्र में सुधार कर सकते थे, किन्तु कुछ भी नहीं किया। उनके देश में आ जाने से मैं पहले की भाँति स्वाधीन नहीं हूँ, पर तो भी जैसा हूँ, अच्छा हूँ।

रोज बाबा की एक पैसे की तम्बाकू खा जाता। बुड्ढे बिचारे मेरे भय से खाट के सिरहाने, तख्त के नीचे रक्खे हुए सन्दूक में, तकिए की खोली में, जहाँ भी तम्बाकू रखते, मैं ढूँढ़-ढूँढ़कर सब जगह से निकाल कर खा जाता। खाता-पीता-मस्त रहता, मौज करता। कोई जञ्जाल नहीं, पढ़ाई-लिखाई एक तरह से छोड़ ही दी थी। चिड़ियाँ मारता, गिलहरियाँ पकड़कर भूनकर खा जाता, वन-वन में गड्ढे-गड्ढे में खरगोशों को ढूँढता फिरता, कोई भी चिन्ता नहीं थी।

पिताजी बक्सर में नौकरी करते थे। वहाँ से मुझे देखने भी नहीं आते; मारने भी नहीं आते। बाबा और दादी का हाल पहले ही कह चुका हूँ। अस्तु, एक वाक्य में—मैं मजे में था।

एक दिन दोपहर को घर आकर दादी से सुना, मुझे साँझे भय्या के साथ कलकत्ते में रहकर पढ़ना-लिखना होगा। भोजनादि समाप्त कर एक चिलम तम्बाकू हाथ में लिए बाबा से कहा "मुझे कलकत्ते जाना होगा?" बाबा बोले—"हाँ।" मैंने पहले से ही सोच रक्खा था, यह सब बाबा की चालाकी है। बोला—"यदि जाना है तो आज ही जाऊँगा।" बाबा बोले—"इसके लिए घबराते क्यों हो भाई! रजनी आज ही कलकत्ते जाएगा। मकान ठीक हो गया है, आज ही जाना होगा।" मैं आगबबूला हो उठा। एक तो उस दिन बाबा की तम्बाकू ढूँढ़े भी नहीं मिली थी—जो एक चिलम मिली थी, उसमें मेरी एक फूँक भी नहीं होगी—उसके ऊपर फिर यह बात। ठगा गया था; स्वयं

ही निमंत्रण लेकर अब लौटा नहीं जा सकता। अतः उसी दिन मुझे कलकत्ते जाना पड़ा। जाते समय बाबा को प्रणाम कर मन-ही-मन बोला—"ईश्वर करे, कल ही मैं तुम्हारे श्राद्ध में घर लौट आऊँ। उसके बाद मुझे कौन कलकत्ते भेजेगा, देख लूँगा।"

२

मैं पहले-पहल कलकत्ते आया। इतना बड़ा भारी शहर पहले कभी भी नहीं देखा था। मनमें सोचा, यदि इस प्रचण्ड गंगा के ऊपर काठ के पुल पर बीचों-बीच, किंवा यह जिस जगह झुण्ड-के-झुण्ड मस्तूल वाले बड़े-बड़े जहाज खड़े हैं, उनके बराबर यदि एक बार खोजाऊँ, तब तो फिर कभी भी घर लौटकर नहीं जा सकूँगा। कलकत्ते में मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगा। इतनी दहशत में क्या फिर प्रेम हो सकता है? कभी हो सकेगा भी—ऐसा भरोसा भी नहीं कर सका।

कहाँ गया वह मेरा नदी का किनारा, वह बाँस के झाड़, मैदान में खड़े बेल के पेड़, मित्रों के बगीचे के एक कोने में अमरूद के पेड़, कुछ भी तो नहीं है। केवल बड़े-बड़े मकान, बड़ी-बड़ी घोड़ागाड़ी और आदमियों की भीड़भाड़, धक्का मुक्की, बड़ी-बड़ी सड़कें—घर के पीछे ऐसा एक बगीचा भी नहीं है कि छिपकर एक चिलम तम्बाकू पीऊँ। मुझे रोना आ गया। आँखों का पानी पोंछकर मन-ही-मन बोला—"भगवान ने जीवन दिया है, भोजन भी वे ही देंगे।" कलकत्ते के स्कूल में भर्त्ती हो गया, अच्छी तरह पढ़ता, लिखता हूँ। काम-काज में मैं आजकल अच्छा लड़का हूँ। गाँव में अवश्य ही मेरा नाम जाहिर हो गया है—जाने दो उस बात को।

मेरे आत्मीय बन्धु-बान्धवों ने मिलकर एक 'मेस' बना लिया

है। हमारे मेस में चार आदमी हैं। साँझे दादा, मैं, रामबाबू और जगन्नाथबाबू। रामबाबू और जगन्नाथबाबू साँझे दादा के मित्र हैं। इनके अतिरिक्त एक नौकर और एक रसोइया ब्राह्मण भी है।

गदाधर हमारा रसोइया ब्राह्मण है। वह मेरी अपेक्षा तीन-चार वर्ष बड़ा है। ऐसा भला आदमी मैंने कभी नहीं देखा। मुहल्ले के किसी भी लड़के के साथ मेरी बोलचाल नहीं थी। सब विभिन्न प्रकृति के लोग होते हुए भी, वह मेरा गहरा मित्र बन गया। उसमें-मुझमें कितनी गप्पें होतीं, उनका कोई ठिकाना नहीं था। उसका घर मेदिनीपुर जिले के गाँव में था। वहाँ की बातें, उसके बचपन का इतिहास सुनने में मुझे बहुत अच्छा लगता। वे सब बातें मैंने इतनी बार सुनी थीं कि मुझे लगने लगा कि यदि मुझे वहाँ पर आँख बाँधकर छोड़ दिया जाय तो मैं सभी स्थानों पर स्वच्छन्दतापूर्वक घूम-फिरकर लौट आऊँगा। शाम को रसोईघर में बैठकर ताश लिए हुए दोनों व्यक्ति खेला करते। खाना खाने के बाद उसके छोटे से हुक्के से दोनों तम्बाकू पिया करते। सब काम हम दोनों मिलकर करते। मुहल्ले में किसी से बोलचाल नहीं; संगी, दोस्त, यार, बन्धु, मोची-पाड़े का भूलो, केलो, खोका, खाँदा सभी मेरा वही है, उसके मुँह से मैंने कभी भी बड़ी बात नहीं सुनी। झूठमूठ ही सब लोग उसका तिरस्कार करते, परन्तु वह किसी भी बात का उत्तर नहीं देता—जैसे सचमुच ही अपराध किया हो।

सब को खिला कर, वह जब रसोईघर की किसी एक छोटी-सी थाली में खाने बैठता, तब मैं सौ काम रहने पर भी वहीं उपस्थित रहता। बेचारे के भाग्य से प्रायः कुछ भी नहीं रहता; यही क्यों भात तक कम पड़ जाता। किसी के भी खाने के समय मैं उपस्थित नहीं रहा—स्वयं खाने को बैठते समय भात कम पड़े, तरकारी कम पड़े, मछली कम पड़े, ऐसा पहले मैंने कभी नहीं देखा। मुझे न जाने कैसा-कैसा लगता था।

बचपन में दादी कभी-कभी दुःखी होकर कहतीं, "लड़का तो आधेपेट खाकर सूख कर काँटा हो गया है—अब नहीं बचेगा।" परन्तु मैं दादी के अनुसार भरपेट किसी भी प्रकार नहीं खा सकता था। सूख ही जाऊँ, या काँटा हो जाऊँ, मुझे आधे-पेट खाना ही अच्छा लगता। अब कलकत्ते में आकर समझा, उस आधेपेट और इस आधे पेट में बहुत अन्तर है। किसी को भरपेट खाना न मिलने पर आँखों में पानी भर आता है, इसे मैंने पहले कभी भी अनुभव नहीं किया था। पहले कईबार बाबा की थालीमें जूठा पानी डालकर उन्हें भोजन नहीं करने देता था; दादी के ऊपर कुत्ते के बच्चे को छोड़ कर उनके आवश्यक काम से उन्हें विरत कर देता था। वे खाना नहीं खातीं, परन्तु आँखों में कभी भी पानी नहीं आया। बाबा, दादी अपने घर के लोग हैं—गुरुजन मुझसे स्नेह करते थे—उनके लिए कभी भी दुःख नहीं हुआ; जानबूझ कर उन्हें अधभूखा, यही क्यों भूखा रख कर भी अत्यन्त सन्तोष प्राप्त करता था। और यह गदाधर, कहाँ का कौन है—उसके लिए बिना-बुलाए आँसू स्वयं आकर गिरने लगते हैं।

कलकत्ते आकर मुझे यह क्या हो गया, उसे निश्चित नहीं कर पाता। आँखों में इतना पानी कहाँ से आता है, सोच नहीं पाता। मुझे किसी ने रोते नहीं देखा। बचपन में ज़िद करने पर साबुत खजूर की छड़ी मेरी पीठ पर तोड़ कर भी गुरुमहाराज अपनी इच्छा पूरी नहीं कर पाए। लड़के कहते, सुकुमार का शरीर ठीक पत्थर जैसा है। मैं मन-ही-मन कहता, शरीर पत्थर की भाँति नहीं है—मन पत्थर जैसा है। नन्हें बच्चे की भाँति रोने नहीं लगता, वास्तव में रोते हुए मुझे लज्जा लगती थी, अब भी होती है, परन्तु संवरण नहीं कर पाता। छिपकर कोई कहीं भी देख न ले चोर द्वारा चोरी करने की तरह—दो बार आँखें पोंछ डालता हूँ। स्कूल पढ़ने जाता हूँ, अपाहिज लोग भीख माँगते हैं। किसी के हाथ नहीं हैं; किसी के पाँव नहीं हैं।

किसी के दोनों आँखें नहीं हैं। ऐसे ही न जाने कितने दुखी लोगों को देखता हूँ, उसे और कह नहीं सकता। जो तिलक लगाए, खंजरी हाथ में लिए 'जय राधे' कह कर भीख माँगते हैं, उन्हीं को जानता था, यह सब भिखारी फिर किस तरह के हैं? मन के दुःख से मन-ही-मन कहता—'भगवान्, इन्हें मेरे गाँव में भेज दो।' रहने दो अभागे भिखारियों की बात--अपनी बात कहता हूँ। आँखें बहुत कुछ खराब हो जाने पर भी मैं एकदम 'विद्यासागर' नहीं हो सका। बीच-बीच में हमारे गाँव की माँ सरस्वती जाने कहाँ से आकर मेरे कन्धे पर बैठ जातीं, कह नहीं सकता। उनकी आज्ञा के वशीभूत हो जो सब सत्कर्म कर डालता था, उसके लिए अब भी मुझे उस सरस्वती के ऊपर घृणा हो आती है। डेरे पर किसका क्या अनिष्ट किया जाय, यह सदैव ढूँढ़ता फिरता। रामबाबू ने तीन घण्टे में अपनी देशी काले पाड़ की धोती में चुन्नटें डालीं; शाम को घूमने जाएँगे; मैंने मौका पाकर कपड़ों को धूलि में घसीट कर प्रायः मैला करके रख दिया। वे शाम को कपड़ों की हालत देख कर बैठे रहे। मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। जगन्नाथबाबू के आफिस जाने का समय होगया; झटपट भोजन करने बैठ गए, एक पल का भी विलम्ब नहीं सह सकते। मैंने मौका देखकर उनकी अचकन के सब बटन काट लिए। स्कूल जाते समय एकबार झाँक कर देख गया, जगन्नाथबाबू झक मार कर रोने की तय्यारी कर रहे थे। मन की प्रसन्नता से मैं सारे रास्ते हँसता-हँसता चला। सन्ध्या के समय जगन्नाथबाबू आफिस से लौट कर बोले—"मेरी अचकन के बटनों को गदा बेटा ने चोरी करके बेच डाला है—साले को भगा दो। जगन्नाथबाबू की अचकन के विवरण से दादा और रामबाबू दोनों ही मुँह दबा कर हँसने लगे। साँझेदादा ने कहा—"कई तरह के चोर हैं, परन्तु अचकन के बटन चुराकर बेच डालने वाला कभी भी नहीं सुना।" जगन्नाथबाबू इस बात से और भी क्रुद्ध होकर बोले—"साले ने बटन सबेरे नहीं लिए,

शामको नहीं लिए, रात में नहीं लिए, ठीक आफिस जाते समय लिए हैं। आज दुर्गति की हद करदी, एक काला फटा-पुराना कोट पहन कर मुझे आफिस जाना पड़ा।"

सब हँस गए। जगन्नाथबाबू भी हँसे। परन्तु मैं नहीं हँस सका। मन में डर लगा, कहीं गदाधर को निकाल दिया गया तो वह तो निर्बोध है, शायद कोई बात नहीं कहेगा, सब अपराध अपने ही कन्धे पर स्वेच्छा से उठा लेगा।

किसने बटन लिए हैं, साँझेदादा शायद समझ गए थे। गरीब गदाधर के ऊपर कोई जुल्म नहीं हुआ। परन्तु मैंने भी सदा के लिए प्रतिज्ञा करली कि अब कभी भी ऐसा काम करके दूसरे को विपन्न नहीं करूँगा।

ऐसी प्रतिज्ञा मैंने पहले कभी नहीं की; कभी करता भी या नहीं, नहीं जानता; केवल गदाधर ने मुझे एकदम मिट्टी बना दिया।

किस उपाय से किसका चरित्र ठीक हो जाएगा, कोई नहीं जानता। गुरु महाराज, बाबा महाशय, और भी अनेक महाशयों की कितनी ही चेष्टाओं से मैंने जो प्रतिज्ञा कभी नहीं की, एक गदाधर महाराज की ओर देखकर आज वही प्रतिज्ञा कर डाली। अब तक प्रतिज्ञा भंग हुई या नहीं, नहीं जानता; परन्तु स्वेच्छा से भंग की हो, ऐसा याद नहीं पड़ता।

अब एक और आदमी की बात कहता हूँ। वह हमारा रामा नौकर है। रामा जाति का कायस्थ है या ग्वाला, ऐसा ही कुछ था। घर कहाँ है, सुना नहीं—ऐसा होशियार और फुर्तीला नौकर सदैव नहीं दिखाई पड़ता। फिर यदि कभी दिखाई दे गया, तो इच्छा है, उसका घर कहाँ है, यह पूछ लूँगा।

सब कामों में रामा को चरखी की भाँति घूमता-फिरता

देखता था। यह रामा कपड़े धो रहा है; तभी देखा साँझेदादा स्नान करने बैठे हैं, वह शरीर को रगड़ रहा है; दूसरे दिन देखा वह पान-सुपारी में अत्यन्त व्यस्त है। इस तरह वह सदा ही घूमता-फिरता। साँझेदादा का वह 'The favourite' (दिलपसन्द) है बढ़िया आदमी। परन्तु मैं उसे देख नहीं सकता था। उस साले के कारण मुझे साँझेदादा से प्रायः ही तिरस्कार मिलता। विशेषकर गदाधर बेचारे को वह प्रायः ही तंग किया करता। मैं उससे बहुत चिढ़ गया था, परंतु उससे क्या होता, वह था साँझेदादा का 'The fovourite!' हमारे बासे के रामबाबू भी उसे नहीं देख सकते थे। वे उसे कहते 'The rouge !' (रंगा सियार)। उस समय वे इस शब्द की व्याख्या स्वयं भी न कर सकने पर भी, हम दोनों अच्छी तरह यह समझते थे, रामा 'The rouge !' (रंगासियार) है। उससे चिढ़ने के और भी कारण थे। प्रधान कारण यह था कि वह स्वयं को रामबाबू कहकर परिचय देता था। साँझेदादा भी जब-कभी रामबाबू कह कर पुकार लेते। हमारे रामबाबू को यह सब अच्छा नहीं लगता था। जाने दो इन व्यर्थ की बातों को...।

एक दिन शाम को साँझेदादा एक लैम्प खरीद लाए। बड़ी अच्छी वस्तु थी, प्रायः पचास-साठ रुपए कीमत की। सबेरे घूमने चले जाने पर मैंने गदाधर को बुलाकर वह दिखाया। गदाधर ने वैसी बत्ती कभी नहीं देखी थी। उसने अत्यन्त आह्लादित होकर उसे दो-चार बार हिला-डुलाकर देखा; तदुपरान्त अपने काम से रसोईघर में चला गया। परन्तु मेरा कौतूहल किसी प्रकार नहीं थमा। किस तरह से चिमनी खुलेगी! किस तरह से अन्दर के पुर्ज देखे जाँय! बहुत हिला-डुलाकर देखा, बहुत बार घुमाने-फिराने की चेष्टा की, परन्तु किसी तरह नहीं खुला। तदुपरान्त देखा, नीचे एक स्क्रू है, अतः उसे घुमाया। कुछ देर घुमाने के बाद अचानक एकदम लैम्प का आधा हिस्सा अलग हो गया। झटपट अच्छी तरह नहीं थाम सका,

सो ऊपर का काँच टेबिल से नीचे गिर कर एकदम चकनाचूर हो गया।

३

उस दिन बहुत रात बीते मैं घर लौट कर आया। बासे पर आकर देखा—एक बड़ा हायतोबा मचा हुआ है। गदाधर को घेरे हुए सब लोग गोल बाँध बैठे हैं। सांझेदादा अत्यन्त क्रुद्ध हो रहे हैं। गदाधर से जिरह चल रही है।

गदाधर की आँखों से टप्-टप् आँसू गिर रहे थे। कह रहा था, "बाबू, मैंने उसे छुआ अवश्य था, परतु तोड़ा नहीं। सुकुमारबाबू ने मुझे दिखाया— मैंने भी देखा था, तदुपरान्त वे भी घूमने चले गए, मैं भी रसोई बनाने चला गया।"

किसी ने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया। प्रमाणित हो गया, उसीने चिमनी तोड़ी है। उसका वेतन बाकी था; उन रुपयों में से साढ़े तीन रुपए देकर फिर नई चिमनी आई। सन्ध्या के समय जब बत्ती जली, तब सभी अत्यन्त प्रफुल्ल हो उठे, केवल मेरी ही दोनों आँखें जलने लगीं। बराबर मन को लगने लगा, उसके साढ़े तीन रुपए चुरा लिए हैं। और नहीं रुक सका। रो-धोकर किसी भाँति साँझेदादा की स्वीकृति लेकर घर आ उपस्थित हुआ। मन में सोचा था, दादी के पास से रुपए लाकर चुपचाप साढ़े तीन रुपए के बदले में गदाधर को सात रुपए दूँगा। मेरे स्वयं के पास तब रुपए नहीं थे। इसीलिए रुपए लेने के लिए मुझे गाँव आना पड़ा। मन में सोचकर आया था एक दिन से अधिक नहीं ठहरूँगा; परन्तु वैसा हुआ नहीं। सात-आठ दिन गाँव में बीत गए।

सात-आठ दिन बाद फिर कलकत्ते के बासे में प्रविष्ट हुआ।

घुसते ही पुकारा—"गदा !" किसी ने उत्तर नहीं दिया । फिर पुकारा, "गदाधर महाराज !" कोई भी उत्तर नहीं । इस बार रामचरण ने आकर कहा—"छोटे बाबू, कब आए ?"

"अभी आया हूँ, महाराज कहाँ है ।"

"महाराज नहीं है ।"

"कहाँ गया ?"

"बाबू ने उसे निकाल दिया ।"

"निकाल दिया ? क्यों ?"

"चोरी की थी, इसलिए ।"

पहले मैं बात को ठीक से नहीं समझ सका, इसी से कुछ देर तक रामा के मुँह की ओर देखता रहा । रामा मेरे मन का भाव समझ कर थोड़ा मुस्कराते हुए बोला—"छोटे बाबू, अचरज हो रहा है, परन्तु उसे तो आप लोग पहिचानते नहीं थे, वह इतना प्यार दिखाता था । वह भीतर-ही-भीतर डाइन जैसा था; भीगी बिल्ली को मैं पहिचानता हूँ ।"

कैसे छिपी हुई डाइन था, किंवा क्यों मैं उस भीगी बिल्ली को नहीं पहिचान सका, इसे नहीं जान सका । जिज्ञासा की, "किसके रुपए चुराए थे ?"

"साँझे बाबू के ।"

"कहाँ रक्खे थे ?"

"कुर्त्ते की जेब में ।"

"कितने रुपए ?"

"चार रुपए ।"

"किसने देखा ?"

"आँखों से किसी ने नहीं देखा, परन्तु वह एक तरह से देखा ही था।"

"कैसे ?"

"वह बात क्या फिर पूछने की है ? आप बासे में नहीं थे; राम-बाबू ने लिए नहीं; जगन्नाथबाबू ने लिए नहीं; मैंने लिए नहीं। फिर किसने लिए ? कहाँ गए ?"

"तूने तब उसे पकड़ लिया ?"

रामा हँसकर बोला—"नहीं तो और कौन पकड़ा ?"

"ठनठनिया चप्पलें आप आसानी से खरीद सकते हैं। ऐसी चट्टी शायद और कहीं नहीं बनती।"

मैं रसोईघर में जाकर रो पड़ा। उस छोटे काले हुक्के पर धूल जम रही थी। आज चार-पाँच दिन से उसे किसी ने नहीं छुआ; किसी ने पानी नहीं बदला। दीवाल पर एक जगह कोयले से लिखा हुआ था, "सुकुमार बाबू, मैंने चोरी की है। इस जगह से जा रहा हूँ। जीवित रहने पर फिर आऊँगा।"

मैं उस समय बालक था। बिलकुल बच्चे की भाँति उस हुक्के को छाती से चिपकाकर रोने लगा। ऐसा क्यों, इसका कारण नहीं समझ सका।

मेरा फिर उस बासे में मन नहीं लगा। सन्ध्या के समय भ्रमण से लौटकर एकबार रसोईघर में जाता। वहाँ दूसरे रसोइए को खाना बनाते देखकर अन्यमनस्क हो अपने कमरे में आकर पुस्तक खोलकर पढ़ने बैठ जाता। कभी-कभी मुझे अपने साँझेदादा भी नहीं सुहाते। रोटी तक मुझे कड़वी लगने लगी। बहुत दिनों बाद एक दिन रात में साँझेदादा से बोला—"साँझेदादा ! क्या कर दिया ?"

"किसका क्या किया ?"

"गदा ने तुम्हारे रुपए कभी भी नहीं चुराए। सभी जानते हैं, मैं गदा महाराज को बहुत प्यार करता था।" साँझेदादा ने कहा—"अच्छा नहीं हुआ सुकमार ! जो होना था हो गया,परंतु राम्रा को तूने इतना मारा क्यों था ?"

"ठीक किया था। मुझे भी निकाल दोगे क्या ?"

दादा ने मेरे मुँह से कभी ऐसी बात नहीं सुनी थी। मैंने फिर जिज्ञासा की, तुम्हारे कितने रुपए वसूल हो गए ? दादा बहुत दु:खी होकर बोले—"अच्छा नहीं किया। सब रुपए उसके काट कर ढाई रुपए वसूल किए। मेरी ऐसी इच्छा नहीं थी।"

मैं जब सड़कों पर घूमा करता था, दूर से यदि किसी भी आदमी को मैली चादर काँधे पर डाले, चप्पल पहने जाते देखता तो दौड़ कर उसे देख कर लौट आता। मेरी एक आशा नित्यप्रति निराशा में परिणित हो जाती, उसे और क्या कहूँ ?

प्राय: पाँच महीने बाद दादा के नाम एक मनीआर्डर आया—डेढ़ रुपए का मनीआर्डर। उसी दिन दादा को मैंने आँखों से पानी बहाते हुए देखा। वह कूपन अभी तक मेरे पास रक्खा है।

कितने वर्ष बीत गए हैं। आज भी वही गरीब गदाधर महाराज मेरे हृदय में आधी जगह घेरे बैठे हैं।

लल्ला

बाल्यावस्था में मेरा एक मित्र था, नाम था उसका लल्ला। पचास-साठ वर्ष पहिले अर्थात् इतने दिन पहिले, जिनकी ठीक धारणा ही तुम न कर पाओगे, हम दोनों एक छोटे-से बँगला-स्कूल की एक ही क्लास में पढ़ते थे। हमारी आयु उस समय दस-ग्यारह वर्ष की रही होगी। आदमी को डरा देने, छका देने के इतने कौशल लल्ला के दिमाग में थे, जिनकी कोई गणना ही नहीं। एक दिन उसने अपनी माँ को अचानक रबड़ का साँप दिखा कर ऐसी आफत में डाला था कि वे जो भयभीत होकर भागीं तो उनके एक पाँव में मोच आ गई और सात-आठ दिन तक लँगड़ा कर चलती रहीं।

माँ ने रुष्ट होकर कहा—"इसके लिए एक मास्टर रख दो। शाम को वे आकर पढ़ाने बैठेंगे, तो फिर इसे ऊधम-उपद्रव मचाने का अवसर ही नहीं मिलेगा।"

सुनकर लल्ला के पिता ने कहा—"नहीं। उन्हें स्वयं भी किसी मास्टर ने नहीं पढ़ाया था, अपने ही

प्रयत्न से दुःख उठाकर. कष्ट भोग कर उन्होंने पढ़ा-लिखा था और आज वे एक सुप्रसिद्ध वकील हैं। उनकी इच्छा थी, लड़का भी उसी प्रकार विद्या प्राप्त करे, परतु शर्त्त यह हुई कि जब लल्ला अपने क्लास की परीक्षा में उत्तीर्ण न होगा, तभी से उसे घर में पढ़ाने के लिए मास्टर रख दिया जाएगा। उस बार लल्ला की जान बच गई, परन्तु वह मन-ही-मन अपनी माँ के ऊपर चिढ़ गया। कारण यह था कि माँ उसके सिर पर मास्टर लादने के प्रयत्न में थी। और वह यह जानता था कि घर में मास्टर को बुलाना तथा पुलिस को लाना एक जैसा है।

लल्ला के पिता धनी गृहस्थ हैं। कई वर्ष हुए, पुराना घर तुड़वा कर नई तीन मंजिल की इमारत बनवाई है। तभी से लल्ला की माँ की बड़ी इच्छा है कि अपने गुरु महाराज को उसमें लाकर उनके चरणों की रज से अपने घर को एवं स्वय को पवित्र करें। परन्तु गुरुमहाराज वृद्ध हैं। फरीदपुर से इतनी दूर आने के लिए तैयार नहीं होते। इस बार अच्छा अवसर हाथ आया है, क्योंकि गुरु-महाराज सूर्यग्रहण में गगास्नान करने के लिए काशी आए हैं; लौटते समय नन्दरानी (लल्ला की माँ) को आशीर्वाद देते जाएँगे। लल्ला की माँ आनन्द से फूली नहीं समातीं। गुरुमहाराज के स्वागत एवं सेवा की तैयारियों में लगी हुई हैं। इतने दिनों बाद उनकी मनोकामना पूरी होगी—घर में गुरुदेव के चरण पधारेंगे, घर पवित्र हो जाएगा।

नीचे के बड़े कमरे से असबाब पत्र हटा दिया गया है। निवाड़ का नया पलङ्ग बनवाया गया है, गुरुजी उस पर शयन करेंगे। इसी कमरे के एक कोने में गुरुजी के पूजा-पाठ के लिए स्थान ठीक किया गया है, क्योंकि तिमंजिले पर बने हुए ठाकुरद्वारे में गुरुजी जा नहीं सकेंगे, उन्हें चढ़ने-उतरते में कष्ट होगा।

कुछ दिनों बाद गुरुजी आ उपस्थित हुए। परंतु दिन कैसा

खराब था, कैसा दुर्योग था। आकाश में काले बादलों की घटा छाई हुई थी। जैसी तेज हवा चल रही थी, वैसी ही जोर की वर्षा हो रही थी। आँधी और पानी थमने का नाम ही नहीं लेते थे।

इधर मिठाई-पकवान बनाने में तथा फल आदि काट कर सजाने में लल्ला की माँ इतनी व्यस्त थीं कि उन्हें दम मारने का भी अवकाश नहीं था। इसी बीच, वे अपने हाथ से झाड़-बुहार कर गुरुजी के पलंग पर मसहरी लगा गईं, बिछौना बिछा गईं। बातचीत में रात हो गई, मार्ग के हारे-थके गुरुदेव खा-पीकर पलंग पर जा लेटे। नौकर चाकरों को छुट्टी मिल गई।

बढ़िया पलंग एवं गुदगुदे बिछौने पर लेट कर प्रसन्न-हृदय गुरुजी ने अपनी शिष्या नन्दरानी को मन-ही-मन अनेकों आशीर्वाद दे डाले।

परंतु आधीरात में अचानक उनकी नींद उचट गई। छत से टपक कर, मसहरी को फोड़कर उनके अत्यन्त पुष्ट पेट के ऊपर पानी गिर रहा था, उनकी तोंद तर हो रही थी। आह, कितना ठण्डा पानी था वह। हड़बड़ा कर पलंग से उठ पड़े, पेट को पोंछते हुए कहने लगे, नन्दरानी ने घर तो नया बनवाया है, परंतु देखता हूँ, पश्चिम की कड़ी धूप से छत इतनी जल्दी चटक गई है।

निवाड़ का पलंग भारी नहीं था। गुरुजी उसे मसहरी सहित दूसरे कोने में खींच ले गए और चुपचाप फिर लेट गए। परंतु एक मिनट भी नहीं बीत पाया, दोनों आँखें ज्योंही बन्द कीं, त्योंही फिर वैसा-ही दो-चार बूँद ठण्डा पानी टप-टप करता हुआ ठीक उसी पेट के स्थान पर फिर आ टपका।

स्मृतिरत्न महोदय फिर उठ बैठे, फिर पलंग को खींच कर दूसरे कोने में ले गए। बोले—"ऐं! छत इस सिरे से उस सिरे तक फट गई जान पड़ती है।"

फिर लेटे, फिर पेट के ऊपर उसी स्थान से टप से पानी गिरा। फिर उठकर, पेट का पानी पौंछ कर, पलंग को खींच कर, एक-दूसरे कोने में ले गए, परंतु वहाँ लेटते ही फिर उसी प्रकार पानी टपकने लगा। फिर खींच कर चौथे कोने में ले गए, परंतु वहाँ भी वही हाल हुआ। अब की बार टटोल कर देखा, बिछौना भी भीग गया है, सोने का कोई उपाय नहीं है।

स्मृतिरत्न कठिनाई में पड़ गए। वृद्ध आदमी ठहरे, जगह भी नई है, जानी हुई नहीं। दरवाजा खोल कर निकलते हुए डर लगता है और यहाँ रहना भी खतरे से खाली नहीं है। क्या ठिकाना, फटी हुई छत कहीं अचानक सिर पर ही न आ पड़े। गुरुजी डरते-डरते दरवाजा खोल कर बरामदे में आए। वहाँ एक लालटेन अवश्य जल रही थी, परंतु कोई आदमी नहीं था। आकाश में घोर अन्धकार छाया हुआ था।

जैसे जोर का पानी बरस रहा था, वैसी जोर की वायु भी चल रही थी। खड़े रहना भी कठिन था। नौकर-चाकर सब कहाँ हैं, कहाँ-किधर सोते हैं, बेचारे यह भी तो नहीं जानते। जोर से चिल्ला-कर पुकारा, परंतु कोई नहीं बोला। एक ओर एक बैंच पड़ी हुई थी। लल्ला के पिता के दरिद्र मवक्किल उसी पर आकर बैठा करते थे।

लाचार होकर गुरुमहाराज उसी पर जा बैठे। उन्होंने मन में यह अवश्य अनुभव किया कि इससे उनकी मर्यादा को बहुत ठेस पहुँची है, परंतु अन्य कोई उपाय ही क्या था? उत्तर से चलने वाली ठण्डी हवा में बरसात के पानी की छींटें मिली हुई थीं और वे उड़-उड़ कर उनके ऊपर गिर रही थीं। ठण्ड से रोएँ खड़े हो रहे थे। आधी धोती खोल कर उन्होंने शरीर को भलीभाँति ढँक लिया और दोनों पाँवों को जहाँ तक बन सका, ऊपर उठा कर आराम पाने

का तरीका निकाल लिया। थकान तथा आराम में विघ्न पड़ जाने से शरीर शिथिल हो रहा था, मनमें खीज भर रही थी, नींद के बोझ से पलकें भारी हो रही थीं। गुरुजी घर में सदैव साधारण भोजन करते थे, आज यहाँ पर भोजन की बढ़िया सामग्री पाकर खूब डटकर खा लिया था। उस पर रात को सोना नह मिल रहा था। परिणाम यह हुआ कि दो-एक खट्टी डकारें कण्ठ तक आकर रह गईं। गुरुजी बहुत घबरा उठे।

इसी समय अचानक एक नया उपद्रव उठ खड़ा हुआ, जिसका गुरुजी को अनुमान तक न था। न जाने कहाँ से बड़े-बड़े मच्छरों ने आकर उनके कानों के पास भनभनाना आरम्भ कर दिया। आँखों की पलकें उठना ही नहीं चाहती थीं। उन्होंने साफ उत्तर दे दिया था। गुरुजी का हृदय आशङ्का से भर उठा, न जाने ये बदमाश मच्छर कितने हैं! यह स्थिति केवल एक-दो मिनट तक ही रही। जो अनिश्चित था, वह निश्चित हो गया—गुरुदेव को भलीभाँति ज्ञात हो गया कि इन रक्त के प्यासे शत्रुओं की कोई संख्या नहीं है। संसार में ऐसा बहादुर कोई नहीं है, जो इस सेना का मुकाबिला कर सके। मच्छरों के काटने में जैसी खुजली थी, वैसी ही जलन भी होने लगी। गुरुजी शीघ्रतापूर्वक वहाँ से उठ भागे, परन्तु मच्छरों ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। जिस प्रकार पानी के कारण कमरे के भीतर टिकना मुश्किल था, उसी प्रकार मच्छरों के मारे बाहर भी चैन नहीं था। गुरुजी बार-बार इधर-उधर हाथ-पाँव चलाते थे, अङ्गौछा फटकार कर मच्छरों को भगाते थे, परन्तु उनके आक्रमण को किसी भी प्रकार नहीं रोक सके। गुरुजी की इस गोलाबारी से यदि दो-चार मच्छर शहीद हो जाते तो उनका स्थान लेने के लिए नई कुमुक आ जाती थी—दूने उत्साह से अन्य सैकड़ों मच्छर धावा बोल देते थे। गुरुजी बरामदे में इस कोने से उस कोने तक दौड़ने-भागने लगे तथा इस शीतऋतु में भी उनके शरीर से पसीना निकलने लगा। उनका हृदय चाहने लगा,

वे गला फाड़कर चिल्लाएँ, पुकारें; परन्तु यह एकदम लड़कपन की बात होगी, लोग हँसेंगे—यह सोचकर चुप बने रहे।

उन्होंने काल्पनिक-दृष्टि से देखा कि उनकी शिष्या नन्दरानी बढ़िया पलंग पर, गुदगुदे गद्दे के ऊपर, मसहरी के भीतर, आराम से सो रही है। घर के अन्य व्यक्ति भी अपने-अपने स्थान पर पूर्ण निश्चिन्त होकर सो रहे हैं। केवल उन्हें सोना नहीं मिल रहा है, इधर-से-उधर और उधर-से-इधर भागने से ही अवकाश नहीं मिलता। कहीं की घड़ी में टन-टन करके चार बजे। गुरुजी ने खीझकर मच्छरों से कहा—"काटो सालो, जी भर कर काटो। अब मेरे हाथ-पाँव नहीं चलते।" इतना कहकर वे बरामदे के एक कोने में, जहाँ तक सम्भव हुआ उतनी पीठ बचाकर, दीवार का सहारा ले, फर्श पर ही बैठ गए। बोले—"सबेरे तक यदि जीवित रहा तो इस अभागे देश में फिर कभी नहीं आऊँगा। प्रातःकाल जो गाड़ी मिलेगी, उसी से अपने घर भाग जाऊँगा। अब ज्ञात हुआ कि इस ओर आने को मेरा जी क्यों नहीं चाहता था! देखते-देखते सब कष्टों को हरने वाली गहरी निद्रा ने आकर उनकी सम्पूर्ण रात्रि का दुःख भुला दिया, दूर कर दिया। स्मृतिरत्न महोदय मूर्च्छित से होकर, उसी स्थान पर वैसे ही सो गए।

इधर नन्दरानी सवेरा होने से पहले ही उठ बैठी थीं। आज उन्हें उठते ही गुरुजी की सेवा में लगना होगा। रात को गुरुजी ने जल-पान किया ही कहाँ है—यद्यपि वह जलपान कुछ कम नहीं था; उतने में दो आदमी भली-भाँति छक जाते, तो भी उनके मन में यही पछतावा था कि गुरुजी का भोजन ठीक से नहीं हुआ। आज दिन में भाँति-भाँति के व्यञ्जन खिलाकर तथा सेवा करके उस कमी को पूरा करना होगा।

वे नीचे उतर कर आईं। देखा, गुरुजी के कमरे का द्वार खुला हुआ है। गुरुदेव सम्भवतः पहले ही उठ गए होंगे, यह विचार कर वे

कुछ लज्जित हो गईं। कमरे के भीतर गर्दन झुकाकर देखा, गुरुजी भीतर नहीं हैं। परन्तु यह क्या मामला है! पलंग दक्खिन की ओर बिछा था, वह उत्तर की ओर चला गया है, गुरुजी का किरमिच का थैला खिड़की के ऊपर से नीचे फर्श पर उतर आया है, सन्ध्या-पूजा की सब सामग्री-पञ्चपात्र, आचमनी, अर्घा एवं आसन आदि इधर-उधर अस्त-व्यस्त बिखरी पड़ी है। इसका कोई कारण उनकी समझ में नहीं आया।

बाहर निकल कर नौकरों को पुकारा, परन्तु सब व्यर्थ; उनमें से अभी कोई सोकर ही नहीं उठा था। तब फिर गुरुजी कहाँ गए? अचानक उनकी दृष्टि एक ओर जा पड़ी, आश्चर्यचकित होकर बोलीं—"यह क्या है?" एक कोने में जहाँ कुछ अँधेरा - कुछ उजाला-सा था, कोई एक आदमी-सा बैठा जान पड़ा। हिम्मत बाँध कर नन्दरानी आगे बढ़ीं। पास झुक कर देखा, यह तो उन्हीं के गुरुजी हैं। अव्यक्त आशङ्का से वे चिल्ला उठीं, "गुरुजी! ओ गुरुजी!"

गुरुजी की नींद उचट गई, उन्होंने आँखें खोल कर देखा। तदुपरान्त सीधे होकर बैठ गए। नन्दरानी कुछ भय, कुछ चिन्ता और कुछ लज्जा के कारण रो दीं। तदुपरान्त बोलीं "गुरुजी, आप यहाँ कैसे पड़े हैं?"

स्मृतिरत्न उठकर खड़े हो गए। बोले—"रात भर कितना कष्ट पाया, क्या बताऊँ बेटी?"

नन्दरानी ने घबरा कर पूछा—"क्या हुआ गुरुजी?"

गुरुजी ने कुछ रुँआसे-से होकर कहा—"नया मकान तुमने अवश्य बनवाया है बेटी, परन्तु इसकी छत सब जगह से छलनी हो रही है। रात भर जो पानी बरसा, वह बाहर नहीं गया; वह सब मेरे इस शरीर पर ही गिरता रहा। पलंग खींच कर जहाँ ले गया, वहीं पानी टपका किया। छत फट कर कहीं मेरे ऊपर ही न आ पड़े,

इस आशङ्का से मैं बाहर निकल भागा; परन्तु इससे भी तो जान नहीं बची। डाँस, मच्छड़ टिड्डी-दल की भाँति झुण्ड बाँधकर न जाने कहाँ से आकर रात भर काटते रहे ? इस छोर से उस छोर, और उस छोर से इस छोर तक, बस इसी तरह भागता रहा। लगता है, शरीर का आधा रक्त तो ये दुष्ट अवश्य पी गए बेटी !"

बड़े प्रयत्न और बड़ी अनुनय-विनय के पश्चात् घर में लाए गए गुरुजी की यह करुण-कथा सुनकर तथा उनकी दुर्दशा को अपनी आँखों से देखकर नन्दरानी की आँखों में आँसू भर आए। वे बोलीं—"परंतु गुरुजी, यह घर तो तिमंजिला बना है। आपके कमरे के ऊपर खुली छत नहीं, और भी दो कमरे हैं। बरसात का पानी तीन-तीन छतों को फोड़ कर आपके ऊपर कैसे गिर सकता है ? परन्तु .."

कहते-कहते उन्हें अचानक ख़याल आया, सम्भवत: यह उसी शैतान लल्ला की ही कोई कारस्तानी होगी, उसी की दुष्ट बुद्धि का यह कोई करिश्मा होगा ! नन्दरानी दौड़कर कमरे के भीतर गईं, बिछौना टटोल कर देखा, बिछी हुई चादर बिल्कुल भींग गई है। ऊपर दृष्टि डाली तो देखा, मसहरी से अब भी बूँद-बूँद करके पानी टपक रहा है।

झटपट मसहरी उतारी तो दिखाई दिया, कपड़े में बँधा बरफ का एक ढेला उस समय तक मौजूद है। नन्दरानी सब समझ गईं। पागल की भाँत झपटती हुई बाहर निकलीं तथा जो भी नौकर-चाकर सामने दिखाई दिया, उसी को चिल्ला कर हुक्म दिया, "देखो,बदमाश कहाँ गया ? घर का काम-काज चूल्हे में जाए, तुम लोग जाओ और उस बदमाश को जहाँ भी मिले, पकड़ कर मारते-मारते यहाँ ले आओ।"

लल्ला के पिता उसी समय उपर से नीचे उतर रहे थे। स्त्री का बेतहाशा बिगड़ना एवं चिल्लाना देख-सुनकर वे दंग-से रह गए। बोले—"क्या बात है ? क्या हुआ ? क्यों चिल्ला रही हो ?"

नन्दरानी रो पड़ीं। बोलीं—"तुम अपने इस पाजी लल्ला को घर से निकाल दो, अन्यथा मैं आज ही गङ्गा में डूब कर इस महापाप का प्रायश्चित करूँगी।"

लल्ला के पिताजी ने पूछा—"उसने किया क्या ?"

नन्दरानी ने कहा—"उसने बिना कारण गुरुदेव की क्या दशा की है, तनिक चलकर अपनी आँखों से तो देख लो।"

तब सब लोग भीतर गए। नन्दरानी ने सब वृत्तान्त कहा और लल्ला की सब करतूत दिखाई। पुनः पति से बोलीं—"इस पाजी लड़के को लेकर गृहस्थी किस प्रकार निभ सकती है, तुम्हीं बताओ ?"

गुरुजी सब समझ गए। वृद्ध अपनी मूर्खता पर स्वयं ही 'हो हो' करके जोर से हँस पड़े।

लल्ला के पिता दूसरी ओर मुँह फेर कर खड़े रहे। सम्भवतः उन्हें भी हँसी आ रही थी।

नौकरों ने आकर कहा—"लल्ला बाबू कोठी में कहीं नहीं हैं।"

एक नौकर ने आकर समाचार दिया, "वे मौसी के घर में बैठे पेट-पूजा कर रहे हैं। मौसी ने उन्हें रोक लिया, यहाँ नहीं आने दिया।"

मौसी अर्थात् नन्दरानी की बहिन। उनके पति भी वकील हैं। वह पास ही दूसरे मुहल्ले में रहती हैं।

इसके पश्चात् लगभग पन्द्रह दिन तक लल्ला ने अपने घर की चौखट पर पाँव नहीं रक्खा।

Durga Sah
Municipal Library
NAINITAL
नैनीताल.